ऋग्वेदीय-शाङ्खायन

रुद्राध्यायः

सम्पादकोऽनुवादकश्च

प्रकाशपाण्डेयः



इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र

भारतीय श्रौत एवं स्मार्त दोनों परम्पराओं में शिव आराधना, वृषोत्सर्ग आदि अनेक याज्ञिक क्रियाओं में रुद्राध्याय का पाठ अनादि काल से होता आ रहा है। नियमतः जो व्यक्ति वेद की जिस शाखा का पारम्परिक रूप से अध्यायी होता है उसे अपनी ही शाखा में प्रतिपादित रुद्राध्याय का पाठ करना अनिवार्य होता है। ऋग्वेदीय रुद्राध्याय अभी तक एकमात्र शाकल-संहिता के पाठ के रूप में उपलब्ध था। पहली बार दक्षिण राजस्थान के बाँसवाड़ा जिले में नागर ब्राह्मणों के द्वारा संरक्षित ऋग्वेद की शाङ्खायन शाखा का रुद्राध्याय प्रकाशित हो रहा है। प्रस्तुत रुद्राध्याय अन्य प्रसिद्ध रुद्राध्यायों से कई दृष्टियों से विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे एक सर्वथा प्राचीन पाठ एवं उसकी पाठ-परम्परा से पाठकों को परिचय प्राप्त होगा। इसके प्रकाशन से निश्चित रूप से वैदिक साहित्य, इतिहास एवं संस्कृत के प्रेमी, अध्येता एवं विद्यार्थी लाभान्वित होंगे।

ट्मा॒य॒ तव्य॑से। वो॒चेम॒ शंत॑मं

र॒त्पश्वे॒ नृभ्यो॒ यथा॒ गवे॑। यथा॑

नो मि॒त्रो वरु॑णो॒ यथा॑

जोष॑सः॥३॥ गा॒थप॑तिं मे॒धप॑तिं

सु॒म्नमी॑महे॥४॥ यः शु॒क्र इ॑

ष्ठो दे॒वानां॒ वसु॑ः॥५॥ शं नः

नृभ्यो॒ नारि॑भ्यो॒ गवे॑॥६॥ अ॒स्मे

हि श॒तस्य॑ नृ॒णां। म॒हि

ोमपरि॒बाधो॒ मारा॑तयो जुहु॒रंत।

यास्तै॑ प्र॒जा अ॒मृत॑स्य पर॑स्मिन्

वेन आ॒भूष॑न्तीः सोम वेदः॥९॥



।। ऋग्वेदीय-शाङ्खायन-रुद्राध्यायः ।।

।। अथ ऋग्वेदीय-शाङ्खायन-रुद्राध्यायः ।।

सम्पादकोऽनुवादकश्च

प्रकाशपाण्डेयः



इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र

जनपथ, नई दिल्ली

Cataloging in Publication Data — DK
[Courtesy: D.K. Agencies (P) Ltd. <docinfo@dkagencies.com>]

Śāṅkhāyanarudrādhyāya. Hindi & Sanskrit.
Atha Ṛgvedīya-Śāṅkhāyana-Rudrādhyāyaḥ/
sampādako'nuvādakaśca, Prakāśapāṇḍeyaḥ
p. cm.
In Sanskrit; translation and introductorymatter in Hindi.
Hymns in praise of Rudra (Siva), Hindu deity.
Includes bibliographical references.
ISBN 13: 9788185503158
ISBN 10: 818550315X

1. Rudra (Hindu deity) — Prayers and devotions.
2. Vedas. Ṛgveda — Criticism, interpretation, etc.
I. Śāṅkhāyana. II. Pāṇḍeya, Prakāśa, 1955-
III. Title.

DDC 294.538 22

ISBN13: 978-81-85503-15-8 ISBN10: 81-85503-15-X

सर्वप्रथम भारत में प्रकाशन वर्ष, 2009

प्रकाशक:
इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला केन्द्र
जनपथ, नई दिल्ली — 110 001
फोन: (011) 2338 1303 फैक्स: 2338 8280
ई-मेल kalakosa_ed@yahoo.co.in वेब: www.ignca.nic.in

वितरक:
डी०के० प्रिंटवर्ल्ड (प्रा०) लि०
पंजीकृत कार्यालय : *'श्रीकुंज,'* एफ-52, बाली नगर,
रमेश नगर मेट्रो स्टेशन, नई दिल्ली — 110015
फोन: (011) 2545 3975; 2546 6019; फैक्स: (011) 2546 5926
ई-मेल: dkprintworld@vsnl.net वेब : www.dkprintworld.com

प्राक्कथन

सामुदायिक, पारिवारिक तथा व्यक्तिगत विपत्तियों एवं संभावित संकटों के निवारण हेतु शिव के तेजस्वी, उग्ररूप रुद्र की वैदिक मन्त्रों से स्तुति, उनके अभिषेक तथा अग्नि में हवन आदि संपादित करने की परम्परा वैदिक काल से ही चली आ रही है ('ऋग्विधान') और स्मृति-काल से होती हुई आज भी सुरक्षित तथा लोकप्रिय है। उत्तर भारत में इस हेतु प्रायः शुक्ल यजुर्वेद (माध्यंदिन) की रुद्राष्टाध्यायी का पाठ किया जाता है। किन्तु अन्यत्र वेद की विभिन्न शाखाओं को मानने वाले प्रायः अपनी-अपनी ही संहिता के मन्त्रों से इस विधान को संपादित करते हैं। प्रत्येक वैदिक संहिता में रुद्र की स्तुति में पर्याप्त मन्त्र हैं जिनको संकलित करके रुद्र याग में प्रयोजनीय पद्धतियाँ बनी हुई हैं। यह भी विधान है कि जिसे अपनी वैदिक संहिता का परिज्ञान न हो, वह तैत्तिरीय संहितान्तर्गत रुद्रमन्त्रों से इस अनुष्ठान को संपादित कर सकता है।

कौषीतकि संहिता ऋग्वेद की उन 21 संहिताओं में एक है जो महर्षि पतञ्जलि (द्वितीय शती ई॰ पू॰) के अनुसार कभी भारत में उपलब्ध थीं। उनमें भी प्राचीन ग्रन्थों में पाँच (शाकल, आश्वलायन, कौषीतकि, बाष्कल एवं माण्डूकायन) का प्रमुखतया उल्लेख हुआ है, जिनमें से आज बाष्कल एवं माण्डूकायन पूर्णतया विलुप्त हैं। शाकल ही मुख्यतया पठन-पाठन में है। आश्वलायन के हस्तलेख तो उपलब्ध हैं किन्तु पाठ परम्परा का लोप हो चुका है। सौभाग्य से कौषीतकि के हस्तलेख भी उपलब्ध हैं और राजस्थान के दक्षिण (बाँसवाड़ा) में

आकर बसे हुए कुछ गुजराती नागर ब्राह्मणों में इसकी अत्यन्त क्षीण होती हुई पाठ-परम्परा भी जीवित है। यद्यपि इन पण्डितों को सम्पूर्ण संहिता आद्योपान्त कण्ठस्थ नहीं है तथापि ग्रन्थ देखकर ये अपने समुदाय की विशिष्ट पाठपद्धति से स्वरसहित उसका शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं। पण्डितों का यह वर्ग अपने समस्त लौकिक एवं वैदिक कर्म (जात-कर्म, यज्ञोपवीत, विवाह, अन्त्येष्टि आदि) कौषीतकि संहिता के मन्त्रों से ही संपादित करता है।

सन् २००६ के प्रारम्भ में इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र के कलाकोश संविभाग की ओर से बाँसवाड़ा में एक वैदिक सम्मेलन आयोजित किया गया था जिसमें कौषीतकि संहिता के मूल पाठ को प्रकाशित करने तथा उसके अध्यायियों की पाठ-प्रक्रिया को रिकॉर्ड करने का निर्णय लिया गया था। इस हेतु विशेषतः श्री पं० हर्षद नागर एवं श्री पं० इन्द्रशंकर नागर द्वारा कुछ हस्तलेखों की छाया-प्रतियाँ तो उपलब्ध कराई ही गईं, साथ ही उन दोनों ने अनेक सूक्तों की पाठ-प्रक्रिया भी रिकॉर्ड कराई। इन्हीं प्राप्त हस्तलेखों में कौषीतकि, या 'शांखायन' अपरनाम से प्रसिद्ध, इस ऋग्वेदीय संहिता का यह रुद्राध्याय भी था जिसे भली-भाँति सम्पादित करने के लिए हमने वेद एवं आगम आदि अनेक विषयों के विद्वान् अपने शिष्य डॉ० श्री प्रकाश पाण्डेय (वर्तमान में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के अन्तर्गत 'गरली' विद्यापीठ में प्राचार्य) को समर्पित किया और आज यह सुसम्पादित तथा अनूदित होकर प्रथम बार विद्वानों को उपलब्ध हो रहा है। यह रुद्राध्याय अभी तक प्रकाश में नहीं आया था। उज्जैन के वेदविद्या प्रतिष्ठान द्वारा भी विभिन्न रुद्राध्यायों का एक संकलन सुश्री प्रज्ञा पाण्डेय द्वारा सम्पादित एवं अनूदित होकर प्रकाशित है किन्तु उसमें शांखायन-कौषीतकि के इस रुद्राध्याय को संकलित नहीं किया गया है।

डॉ० प्रकाश पाण्डेय को रुद्राध्याय का जो हस्तलेख उपलब्ध था वह न तो पूर्ण था, न ही पूर्णरूप से शुद्ध कहा जा सकता है। अत्यन्त परिश्रम पूर्वक 'स्मृति कौस्तुभ' एवं 'ऋग्विधान' आदि प्राचीन ग्रन्थों को

देख कर उन्होंने मन्त्रों की संख्या एवं उनका क्रम निर्धारित किया तथा उन्हें व्यवस्थित रूप से सँजो कर, उनका अनुवाद प्रस्तुत किया। इस प्रकार अब यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक बन गया है।

संपूर्ण ऋग्वैदिक कौषीतकि संहिता के प्रकाशन की योजना भी इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र में है। यदि ईश्वर की अनुकम्पा प्राप्त रही तो वह भी शीघ्र प्रकाश में आयेगी। थोड़ा बहुत प्रयास कौषीतकि संहिता के मौखिक पाठ को बचाने का भी हो रहा है, इत्यलम्।

गया चरण त्रिपाठी
विभागाध्यक्ष, कलाकोश

अनुक्रमणिका

ऋग्वेदशाङ्खायनशाखीयरुद्राध्यायप्रत्यायनम्

दिव्यं ज्योतिः सलिलपवनैः पूरयित्वा त्रिलोकी-
मेकीभूतं पुनरपि च तत्सारमादाय गोभिः ।
अन्तर्लीनो विशसि वसुधां तद्गतः सूयसेऽन्नं
तच्च प्राणास्त्वमिति जगतां प्राणभृत् सूर्य आत्मा।।

–वेदार्थदीपिकायाम् २।१७।

१.१ वेदे सम्प्रदायद्वयमभ्युपगम्यते। एको ब्रह्मणा प्रवर्तितः। अपरश्चादित्येन प्रकाशितः। सर्वत्र देशे भृशं मुद्रितानामृगादिसंहितानां कालविलासवशादध्ययने क्षीणतायां सत्यामप्यद्यापि भरतभूमावुभयोः सम्प्रदाययोः चतुर्णां वेदसंज्ञकसंहितानां श्रुतिपरम्परया गुर्वध्ययन-पूर्वकमविच्छिन्नमभ्यसनं भवत्येव। इयमविच्छिनाध्ययनपरम्परा वेदस्यापौरुषेयत्वमपि प्रमाणयति। प्रमाणाकारस्तु –

वेदः अपौरुषेयः, अध्येतृपरम्परयाध्ययनाध्यापनस्याविच्छेदे सति कर्तुरस्मरणात्, आत्मवत्। इति।

अथोक्तयोः संप्रदाययोः विषये वराहपुराणे आख्यायिका स्मर्यते। तथा हि कल्पादौ शङ्खासुरापरनामा हयग्रीवाख्यः दैत्यः वेदमपजहार। ज्ञानरूपवेदस्य रक्षार्थं परमकारुणिको भगवान् श्रीविष्णुर्हयग्रीवं व्यापाद्य वेदञ्चोद्धृत्य ब्रह्मणे प्रादात्। ब्रह्मा तं वेदं द्विधा विभज्यैकं भागं भगवत्यादित्ये संरक्ष्यापरञ्च भागं स्वपुत्रादिभ्यो वसिष्ठाङ्गिरोमरीचिभृग्वत्रिप्रमुखेभ्यो-ऽध्ययनानुशासनविधिना प्रायच्छत्। तेऽपि स्वपुत्रपौत्रगोत्रशिष्यप्रशिष्येभ्यो-ऽध्यापयामासुः।

१.२ अग्रे द्वापरयुगान्ते भगवान् कृष्णद्वैपायनः मनुष्यानल्पवीर्यान् स्वल्पसत्त्वाँश्च दृष्ट्वा तान् प्रत्यनुजिघृक्षया ब्रह्मणा प्रकाशितं पूर्वोक्तं

वेदञ्चतुर्धा व्यस्य पैलाय ऋग्वेदं, वैशम्पायनाय यजुर्वेदं, जैमिनये सामवेदं, सुमन्तवे चाथर्ववेदमध्ययनविधिना प्रायच्छत्। सेयं वेदचतुष्टयी 'ब्रह्मसम्प्रदायः' इति कथ्यते। अनन्तरं कस्मिँश्चित्काले भगवान् योगीश्वरो याज्ञवल्क्यः महर्षेर्विदग्धशाकल्याद् ऋग्वेदमध्यगात्। दुर्दैवादेकदाकस्मिक-कारणवशाद् गुरुणा सह विवादे संवृत्ते याज्ञवल्क्यो गुरोः शापभिया तस्मात् प्राप्तं वेदं तत्याज। ततो वेदवर्जितः जातः। तस्मात् खिन्नः सन् स्वमातामहं वैशम्पायनमुपगम्य यजुर्वेदमधीतवान्। अत्रापि गुरुणा सह वैमत्ये जाते तदधीतमपि वेदं तत्याज। ततः नाहम्मानुषमाचार्यमभ्युपैमीति निश्चित्य तपस्तप्त्वा भगवन्तमादित्यं तुष्टाव। अनुग्रहावतारो भगवानादित्यो याज्ञवल्क्यं ब्रह्मणा स्वमण्डले निहितान् ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्यान् वेदानध्यापयामास। अध्ययनानन्तरं लोककल्याणाय वेदप्रचारार्थमाप्तगुर्वाज्ञो योगीश्वरो वेदविद्यां स्वशिष्येभ्यः प्रादात्। एवं हि, ऋग्वेदं शांखायनाय, यजुर्वेदं काण्वमाध्यंदिनादिभ्यः, कौथुमापराभिधानाय सामश्रवसे सामवेदं, शौनकायाथर्ववेदं यथोक्तविधिना प्रायच्छत्। इयं वेदचतुष्टयी 'आदित्यसंप्रदायः' इति कीर्त्यते। एवं संप्रदाययुगले न्यस्तस्य पाठपरम्परया व्यस्तस्य च ऋग्वेदस्य ब्रह्मसम्प्रदाये विंशतिप्रवक्तारः सञ्जाता आदित्यसम्प्रदाये चैकः शाङ्खायन एव प्रवक्ता बभूव। शाङ्खायनेन प्रचारितस्य ऋग्वेदस्य प्रवचनविस्तरोऽग्रे शाखान्तररूपेण न जातः।

१.३ अत्र केनचिदुच्येत का नाम शाखेति। तत्रोच्यते किञ्चित्। शाखानाम वेदैकदेशः इत्यभियुक्ताः वदन्ति। वेदैकदेश इति कथनेन यथा न कश्चिद्विचिकित्सेत् तथानतिविस्तरेणैवं बोद्धव्यम्। आदौ ब्रह्मा एकमेव वेदं प्रणिनाय। द्वापरान्ते तस्य मूलवेदस्य ऋग्यजुस्सामाथर्वभेदेन चतुर्धा व्यासः जातः। यथोक्तं भारते शान्तिपर्वणि

त्रेतायां संहता वेदा यज्ञा वर्णास्तथैव च।
संरोधादायुषस्त्वेते व्यस्यन्ते द्वापरे युगे।।

२३८।१०४ इति।

तस्मात् ब्रह्मोक्तमूलवेदावच्छेदेन ऋग्यजुस्सामाथर्ववेदा अपि वेदैकदेशत्वाच्छाखा एवेत्यभिधातुं शक्यन्ते। ततः ऋगादीनां वेदानां प्रवाचकेभ्यः

तत्समानार्थाः संहिताः प्रदत्ताः। ताश्च संहिताः तत्तद्वेदानां न्यूनातिरिक्तपद-प्रकाशकत्वात् तत्तद्वेदानामेकदेशमेवोपस्थापयन्ति न त्वखिलं वेदम्। तस्मात् ऋगाद्यवच्छेदेन शाकलशाङ्खायनादयोऽपि शाखा इत्युच्यन्ते। यथोक्तं तत्रैव—

ऋग्यजुःसामशाखानामेकैका व्याकृतास्त्वया।
तावता तत्समानार्था जाताः शाखास्ततः पराः।। इति।

तथा च तत्तद्वेदगतभेदेष्वेवान्यतमैका संहिता शाखेत्युच्यते। एवं च ऋग्वेदे एकविंशतावन्यतमा शाङ्खायनी शाखेति भवति। आदिप्रवचनकर्तृभेदेन काचिद्विशिष्टा पाठपरम्परा प्रवर्तते। सर्वासां पाठपरम्पराणाम् आनुपूर्वी तत्तत्स्थलेषु यथावत् सुरक्षिता स्यादित्येतदर्थं सर्वाः शाखाः मूलप्रवाचकस्य नाम्नैवाभिधीयन्ते भिद्यन्ते च। अत्र प्रकरणे शाङ्खायनः कौषीतकिः आदित्यसम्प्रदायादागतां ऋग्वेदसंहितामवाप। स एव प्रथमः प्रचारकः जातः तस्मात्तस्यैव नाम्ना संहितायाः शाखाविशेषस्य आनुपूर्वी कीर्त्यते। यदप्यन्यपुराणेषु शाङ्खायनशाखाया उल्लेखं न पश्यामः किन्त्वग्निपुराणं तु ऋग्वेदस्य शाखाद्वयमेव स्मरति तद्यथा—

भेदः शांखायनश्चैक आश्वलायनो द्वितीयकः।।

२७१।२।। इति।

२.१ सेयं शाङ्खायनी शाखा उत्तरे गुर्जरे प्रदेशे प्रचारितासीत्। अस्मिन् विषये हिलेब्राण्टमहोदयः शाङ्खायनश्रौतसूत्रस्य भूमिकायां प्रथमे पत्रे महार्णवाख्याद् ग्रन्थात् श्लोकमुदाहरति—

तद्यथा—

उत्तरे गुर्जरे देशे बह्वृचः परिकीर्तिताः।
कौषीतकिब्राह्मणं च शाखा शाङ्खायनी स्थिता।। इति।

ऋग्वेदाध्यायिनः बह्वृच इत्युच्यन्ते। अद्यापि गुर्जरेष्वेवेयं शाखा यत्र-कुत्र नागरोपाह्वेषु कौषीतकिगोत्रे लब्धजनिषूपाध्यायेषु संरक्षिता वर्तते। तेष्वन्यतमस्याभिज्ञानं देहलीस्थ-इन्दिरागाँधी-राष्ट्रीय-कलाकेन्द्रस्य

शोधाधिकारिणः श्रीमदाचार्यगयाचरणत्रिपाठिपुरोगमाः कलाकोशविभागीयाः विद्वांसः अकुर्वन्। महतायासेन च तैः शाङ्खायनानां रुद्रजपपाठस्य कोशः (हस्तलेख इति भाषायाम्) राजस्थानप्रान्तस्य बाँसवाड़ा इति ग्रामवास्तव्यस्य श्रीहर्षदनागरमहोदयस्य सकाशादुपलब्धः। अपि चास्य रुद्रजपस्य दृश्यध्वनिमुद्रणमपि इन्दिरागाँधी-राष्ट्रीय-कलाकेन्द्रस्याधिकारिभिः कारितम्।

२.२ शाङ्खायनशाखाभ्यासिनस्त्वद्य भारतभूमावपि क्वाचित्का एव सन्ति। तस्मात् शाङ्खायनरुद्राध्यायस्योपलब्धिरतिशयेन महत्त्वावहा समादरणीया प्रकाशनीया प्रचारणीया चास्त्येव। तथा हि गुरुणा श्रीमदाचार्यगयाचरणत्रिपाठिना प्रचोदितः सन् एष रुद्रजपकोशोऽशेषसत्पात्रग्राह्यरूपः बहूनामुपकारकः यथा स्यात्तथा संस्करोमि। परमेश्वरस्यानुग्रहादचिरादेव याजकेभ्यो भक्तेभ्यश्च सुलभीकरिष्यते।

३.१ यज्ञस्य त्रिधा सम्पादनं भवति वैदिकविधिना तान्त्रिकरीत्या वैदिकतान्त्रिकमिश्रविधिना च। यथोक्तं श्रीमद्देवीभागवते-

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्रस्त्रिविधो मख इष्यते।। इति।

सर्वत्र भारते नित्यकाम्योभयरूपेण रुद्रस्योपासना वैदिकतान्त्रिक मिश्रविधिना महत्या श्रद्धया भवति। यतः परमेश्वरः शिव एव सर्गरूपेण स्थित्वा अपरोक्षतया सर्वाननुगृह्णाति ततोऽस्य प्रत्यक्षरूपस्येश्वरस्य श्रौतं स्वरूपमत्र गीयते। तद्यथा शतपथश्रुतौ कल्याणापरपर्यायस्य परमेश्वरस्य रुद्रस्य सर्वरूपत्वमेवमाम्नायते-

"प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीदेक एव। सोऽकामयत स्यां प्रजायेयेति। सोऽश्राम्यत् स तपोऽतप्यत। तस्माच्छ्रान्तात् तेपानादापोऽसृज्यन्त। तस्मात् पुरुषात्तप्तादापो जायन्ते।।१।।

आपोऽब्रुवन्- क्व वयं भवामेति। तप्यध्वमित्यब्रवीत्। ता अतप्यन्त। ताः फेनमसृजन्त। तस्मादपां तप्तानां फेनो जायते।।२।।

फेनोऽब्रवीत्- क्वाहं भवानीति। तप्यस्वेत्यब्रवीत्।

सोऽतप्यत। स मृदमसृजत। एतद्वै फेनस्तप्यते यदप्स्वावेष्टमानः प्लवते। स यदोपहन्यते मृदेव भवति।।३।।

मृदब्रवीत्– क्वाहं भवानीति। तप्यस्वेत्यब्रवीत्। सातप्यत। सा सिकता असृजत। एतद्वै मृत्तप्यते यदेनां विकृषन्ति तस्माद्यद्यपि सुमार्त्स्नं विकृषन्ति सैकतमिवैव भवति। एतावन्नु तद् यत् क्वाहं भवानि क्वाहं भवानीति।।४।।

सिकताभ्यः शर्करामसृजत। तस्मात् सिकताः शर्करैवान्ततो भवति।। शर्करया अश्मानम्। तस्माच्छर्कराश्मैवान्ततो भवति। अश्मनोऽयः। तस्मादश्मनोऽयो धमन्ति। अयसो हिरण्यम्। तस्मादयो बहुध्मातं हिरण्यसंकाशमिवैव भवति।।५।।

यद् यदसृज्यत। अक्षरत् तत्। यदक्षरत् तस्मादक्षरम्। यदष्टौकृत्वोऽक्षरत्। सैवाष्टाक्षरा गायत्र्यभवत्।।६।।

अभूद्वा इयं प्रतिष्ठेति। तद्भूमिरभवत्। तामप्रथयत्। सा पृथिव्यभवत्। तस्यामस्यां प्रतिष्ठायां भूतानि च भूतानां च पतिः संवत्सरायादीक्षन्त। भूतानां पतिर्गृहपतिरासीदुषाः पत्नी।।७।।

तद्यानि तानि भूतानि ऋतवस्ते। अथ यः स भूतानां पतिः संवत्सरः सः। अथ या सोषाः पत्नी, औषसी सा। तानीमानि भूतानि स भूतानां च पतिः संवत्सरः उषसि रेतोऽसिञ्चन्। स संवत्सरे कुमारोऽजायत। सोऽरोदीत्।।८।।

तं प्रजापतिरब्रवीत्। कुमार, किं रोदिषि यस्माच्छ्रमात्तपसोऽधिजातोसीति। सोऽब्रवीत्– अनपहतपाप्मा वा अस्मि अविहितनामा। नाम मे धेहीति। तस्मात् पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्। पाप्मानमेवास्य तदपहन्ति। अपि द्वितीयम् अपि तृतीयम् तदपहन्ति। तमब्रवीत्। अपि द्वितीयम् अपि तृतीयम्। अभिपूर्वमेवास्य तत् पाप्मानमपहन्ति।।९।।

तमब्रवीत् रुद्रोऽसीति। तद्यदस्य तन्नामाकरोत्– अग्निस्तद्रूपमभवत्। अग्निर्वै रुद्रः। यदरोदीत् तस्माद्रुद्रः। सोऽब्रवीत् ज्यायान् वा अतोऽस्मि धेह्येव मे नामेति।।१०।।

तमब्रवीत् शर्वोऽसीति। तद्यदस्य तन्नामाकरोत् आपस्तद्रूपमभवन्नापो वै सर्वः। अद्भ्यो हीदं सर्वं जायते। सोऽब्रवीत् ज्यायान्वा अतोऽस्मि धेह्येव मे नामेति।।११।।

तमब्रवीत् पशुपतिरसीति। तद्यदस्य तन्नामाकरोत्। ओषधयस्तद्रूपमभवन्। ओषधयो वै पशुपतिः। तस्माद्यदा पशव ओषधीर्लभन्तेऽथ पतीयन्ति। सोऽब्रवीत्– ज्यायान्वा अतोऽस्मि धेह्येव मे नामेति।।१२।।

तमब्रवीत् उग्रोऽसीति। तद्यदस्य तन्नामाकरोत्। वायुस्तद्रूपमभवत्। वायुर्वा उग्रः। तस्माद्यदा बलवद्वाति उग्रो वातीत्याहुः। सोऽब्रवीत् ज्यायान्वा अतोऽस्मि धेह्येव मे नामेति।।१३।।

तमब्रवीत् अशनिरसीति। तद्यदस्य तन्नामाकरोत् विद्युत्तद्रूपमभवत्। विद्युद्वाशनिस्तस्माद्यं विद्युद्धन्ति, अशनिरवधीदित्याहुः। सोऽब्रवीत् ज्यायान्वा अतोऽस्मि धेह्येव मे नामेति।।१४।।

तमब्रवीत् भवोसीति। तद्यदस्य तन्नामाकरोत् पर्जन्यस्तद्रूपमभवत्। पर्जन्यो वै भवः। पर्जन्याद्धीदं सर्वं भवति। सोऽब्रवीत्– ज्यायान्वा अतोऽस्मि धेह्येव मे नामेति।।१५।।

तमब्रवीत् महान् देवोऽसीति। तद्यदस्य तन्नामाकरोत् चन्द्रमास्तद्रूपमभवत्। प्रजापतिर्वै चन्द्रमाः। प्रजापतिर्वै महान् देवः। सोऽब्रवीत् ज्यायान्वा अतोऽस्मि धेह्येव मे नामेति।।१६।।

तमब्रवीत् ईशानोऽसीति। तद्यदस्य तन्नामाकरोद् आदित्यस्तद्रूपमभवत्। आदित्यो वा ऽईशानः। आदित्यो ह्यस्य

सर्वस्येष्टे। सोऽब्रवीत् एतावान् वा अस्मि मा मेतः परो नाम धा इति।।१७।।

तान्येतान्यष्टावग्निरूपाणि। कुमारो नवमः।। सैवा-ग्नेयस्त्रिवृत्ता।।१८।।

यद्वेवाष्टावग्निरूपाणि। अष्टाक्षरा गायत्री तस्मादाहु-र्गायत्रोऽग्निरिति। सोऽयं कुमारो रूपाण्यनुप्राविशत्। न वा अग्निं कुमारमिव पश्यन्ति एतान्येवास्य रूपाणि पश्यन्ति। एतानि हि रूपाण्यनु प्राविशत्।।१९।।"

माध्यन्दिनशतपथब्राह्मणे ६।१।३।।

इत्येतावता महता प्रबन्धेन अग्न्यबोषधिवायुविद्युत्पर्जन्य-चन्द्रमसादित्यपरिच्छेदात् इष्टस्य शिवस्य रुद्रस्य सर्वेश्वरत्वं सर्वमयत्वं सूपपादितं भवति।

३.२ निरवच्छिन्नप्रकाशायाः श्रुतेरनुगामीनि पुराणानि रुद्रस्योत्पत्तिं स्वरूपञ्च कल्पभेदाद् बहुधा स्मरन्ति ईश्वरस्यानुत्तरतत्त्वत्वं प्रतिष्ठापयन्ति। तद्यथा कौर्मे दशमेऽध्याये स्मर्यते यत् 'प्रजाः स्रष्टुकामः ब्रह्मा सुदीर्घकालं तपस्तेपे। किन्तु न किमपि समवर्तत। सुदीर्घकालतप्ते ब्रह्मणि क्रोधो व्यजायत। क्रोधाविष्टनेत्राभ्यामश्रुबिन्दवः प्रापतन्। तेभ्यो ब्रह्मण आत्मभूता भूताः प्रेताश्च प्रादुरभवन्। ततः ब्रह्मणो मुखात् सहस्रादित्यसंकाशः कल्पान्तदहनोपमः देवदेवः शिवः स्वयं तस्य प्राणरूपेण प्रादुरासीत्। प्रकटीभूय सः घोरं रुरोद। रुदते तस्मै प्रजापतिः अष्टौ नामानि व्यधात्। तेष्वाद्यः रुद्र इति प्रथितः। सप्तान्यानि भवः शर्वः ईशानः पशुपतिः भीमः उग्रः महादेवश्चेति नामानि प्रथितानि। ब्रह्मा तान्येव शिवस्य अष्टमूर्तित्वेन प्रत्यभ्यजानत्। ताश्च मूर्तयः-

सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येता अष्टमूर्तयः।।

एतेन स्मृतिवर्णनेन रुद्रस्य शिवमयत्वं सर्वमयत्वञ्च श्रुत्यविरोधेन सम्पन्नं भवति। एतदेव न्यूनाधिकवचनैः पाद्मे विष्णुपुराणे चोपपादितम्। व्यावहारिककालविधायकसूर्यचन्द्ररूपस्य महाकालनाम्ना कीर्तितस्य शिवस्य पूर्वोक्ततनुभिः प्रत्यक्षत्वात् यथोक्तविधानेन विहितो यागः आशुफलदायी भवतीति सर्वे भक्ताः याजकाः यजमानाः स्वस्वानुभवबलेन प्रमाणीकुर्वन्ति।

४.१ सर्वे वेदाध्यायिनो यथावसरं यथाकर्म स्वाध्यायार्थं च स्वस्वशाखानुसारं रुद्रसूक्तानि उच्चरन्ति। यत्रापि श्रौते गृह्ये वा कर्मणि रुद्रकलशस्य स्थापनं भवति अथवा गोविवाहापरपर्यायः वृषोत्सर्गः विधीयते। तत्र अभियुक्ताः रुद्रसूक्तपाठस्य अवश्यकर्तव्यतां वदन्ति। रुद्रसूक्तानां द्विधा प्रयोगो भवति। आद्यः स्वाध्यायप्रार्थनरूप आवर्तनप्रयोगरूपः सुपूजितशिवलिङ्गाभिषेचनकाले उच्चारणरूपः अपरोऽभिषेकप्रयोगश्चेति। उभावपि स्वशाखानुरोधेन निर्वहणीयाविति विधानं मेरुतन्त्रे विततम्। तद्यथा–

शाखायां यस्य तु यथा स्वाध्यायौ पठितावुभौ।
पठनीयौ तथा तेन शाखाभेदं न कारयेत्।।

१२।१४४।।

कश्चिद्यजमानः स्वाध्यायी नास्ति चेत् किंवा स्वशाखामपि न जानाति तदा तेन यज्ञार्थं वृतस्य होतुराचार्यस्य वा शाखाद्वारेणैव रुद्रप्रयोगः संपादनीयः। यथोक्तं तत्रैव–

शाखा तु यजमानस्य ब्राह्मणद्वारतः कृते।।

१२।१४८।।

प्रायेण रुद्राध्यायस्य जपः पाठः स्वाध्यायो वा माध्यन्दिनेषु प्रचलितः इत्यनुभूयते। मेरावपि माध्यन्दिनस्यैव रुद्राध्यायप्रयोगविस्तरः कृतो वर्तते। किन्तु शास्त्रदृष्ट्यात्र तैत्तिरीयाणां महत्त्वं विशेषेण विज्ञाप्यते। मेरुतन्त्रे एवोक्तं यत्–

रुद्रो न यस्य शाखायां परिशिष्टान्वितं स तु।
पठेद्रुद्रं तैत्तिरीयं लुप्तशाखस्तमेव हि।।

१२।१४६।।

अपि च–

अथवा तैत्तिरीया स्यान्नान्या शाखा प्रपूज्यते।।

१२।१४७।।

शाखाभेदेन बहूनां मन्त्राणां क्रमभेदोऽपि भवति यथा प्रस्तुते ग्रन्थे बहुत्र पश्यामः। संहितायाः अभावात् मन्त्रप्रतीकं धृत्वान्यशाखायां पठितान् मन्त्रान् कश्चिद्यथावदविचार्य मा प्रयुञ्जीतेति धिया मेरुतन्त्रम् शाखामिश्रणं प्रतिबध्नाति अनेन वचनेन–

शाखामिश्रं कृतं कर्म यजमानं विनाशयेत्।।

१२।१४५।

एवं प्रतिशाखं रुद्रजपमुद्दिश्य सूक्तानां निर्धारणं गृह्यपरिशिष्टादिषु लभ्यते।

तदनुरूपमेव जपपूजाभिषेककाम्यप्रयोगस्वाध्यायाद्यर्थं सूक्तानां स्वस्वशाखासंहितासूपलब्धयाऽनुपूर्व्या कुर्यादित्युक्तं भवति।

४.२ शाङ्खायनशाखोक्तरुद्रजपस्य स्वरूपं वैशिष्ट्यञ्च स्मृतिकौस्तुभे आपदेवो निबबन्ध। स हि गृह्यरुद्रपरिशिष्टयोः प्रमाणेन रुद्रजपविधानं द्विविधं विवृणोति। प्रथमे गृह्यपरिशिष्टविधौ रुद्रकलशस्थापनावरे रुद्रजपः भवति। तथा हि रुद्रकलशे स्वशाखोक्तरीत्या,

'कद्रुद्रायेमारुद्रायातेपितरिमारुद्रायस्थिरधन्वने' इति सूक्तचतुष्टयं त्र्यम्बकं चेत्यृक् पठेत्।

अथ च द्वितीयविधौ रुद्रपरिशिष्टोक्तरीत्या–

अग्निमीडे०, येनेदं०, सहस्रशीर्षा०, अहं रुद्रेभिः०, नतमंह०, आशुः शिशानो०, विभ्राड् बृहत्०, कद्रुद्राय०, इमारुद्राय०, आतेपितः०, इमारुद्रायस्थिर०, सोमा रुद्रा धारयेथा० इति सूक्तानि, अथ च जराबोध०, नमो महद्भ्यः ०, रुद्राणामेति०, प्र वः पान्तं०, आ वो राजानं०, कद्धिष्ण्यासु०, हंसः शुचिषद्०, कथामहे रुद्रियाय०, तमुष्टुहि यः०, भुवनस्य पितरं०, रथीतमं कपर्दिनं०, रुद्रस्यये०, अस्मे रुद्रा० प्रवोऽच्छारिरिचे०, त्र्यम्बकं चेति मन्त्राँश्चोच्चारयेदिति विस्तरेण रुद्रजपः विहितः।

४.३ अत्र निबन्धकारः शाङ्खायनशाखाध्यायिनां कृते ऋग्विधानोक्तां विशेषयोजनामुदाहरति। तद्यथा–

ओंकाराद्यास्तु ता जप्त्वा सावित्रीं तदित्यृचम्।
आपोहिष्ठेति सूक्तं च शुद्धवत्योऽघमर्षणम्।
शंवत्यः स्वस्तिमत्यश्च पावमान्यस्तथैव च।
सर्वत्रैतत्प्रयोक्तव्यमादावन्ते च कर्मणाम्।।

एवं सर्वत्र यागेष्वादावन्ते च रुद्रजप कार्य इति विहितं भवति। अत्र सप्तव्याहृतिसहिता सावित्री, आपो हिष्ठा० सूक्तं, शुद्धवत्यः इति, शुचीवो० इति; एतोन्विन्द्र० इति त्रयो मन्त्राः उच्चार्याः किन्तु अस्मत्सविधे वर्तमाने कोशे तु शुचीवो० इत्यस्य स्थाने सस्नुशिरित्येकोऽथर्ववेदमन्त्रः पठितः, एतोन्विन्द्र० इत्यादि त्रयो मन्त्राः ऋग्विधानोक्ते विधौ कोशे च समानम्; ततः ऋतं च सत्यं च इति सूक्तं, शंवत्यः० इत्यादि चतुर्विंशति शंवतीसूक्तमन्त्राः, स्वस्तिनो मिमीता० इति सप्तर्चः स्वादिष्ठयेति पावमान्यः दशर्चः। इति यथोक्तक्रमेण अग्निमीडे० सूक्तात्प्राक् त्र्यम्बकान्ते च पठितास्सन्ति।

इत्थमस्मच्छाङ्खायनशाखीयस्य रुद्रजपस्य कोशे पठितानां सूक्तानां मन्त्राणां च घटनं, सूक्तस्य मन्त्रस्य वा क्रमः ऋग्विधानोक्तदिशा वर्तते। एतेषां सूक्तानां शाकलशाखायां स्थितिमित्थमवमवधारयेत्–

१. ॐतत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्य॒म् ऋग्वेदशाकलपाठे (ऋ.शा.पा.) ३।६२।१०।

२. ॐआपो॒ हि ष्ठा इति ऋ.शा.पा. १०।९।१-९। इति स्थले पठ्यते। अस्यैव सूक्तस्य दशमो मन्त्रोऽथर्ववेदे ६।२३।१ इति स्थल उपलभ्यते, पुनरेकादशात्त्रयोदशं यावत् मन्त्राः ऋ.शा.पा. ८।९५।७-९ स्थले उपलभ्यन्ते।

३. ॐऋ॒तं च॑ स॒त्यं च इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. १०।१९०। इत्यत्रोपलभ्यते।

४. ॐशं॒व॒तीः पा॑रयन्त्येतम् इति सूक्तस्य आदितः १-३, ८, ९

मन्त्रा एव मोक्षमूलरसंस्करणस्य ऋ.शा.पा. खिले पठिताः। शिष्टा मन्त्राः शांखायनशाखीया एव सन्ति।

५. ॐस्वुस्ति नो इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. ५। ५१।११-१५ स्थले उपलभ्यते। प्रस्तुते कोशे १-५ इति स्थितिः वर्तते। अत्रापि षष्ठसप्तममन्त्रौ शाङ्खायनशाखीयावेव।

६. ॐस्वादिष्ठया इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. ९।१ स्थले उपलभ्यते।

७. ॐअग्निमीळे पुरोहितम् इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. १।१ स्थले उपलभ्यते।

८. ॐयेनेदं भूतं इति सूक्तस्य षण्मन्त्राः शुक्लयजुर्वेदीयवाजसनेयि-शाखायां ३४।१-६ इति स्थले क्रमभेदेन पठ्यन्ते। अस्मिन् शांखायनोक्ते शिवसङ्कल्पसूक्ते अष्टाविंशतिर्मन्त्राः पठिताः। एते सर्वे मन्त्राश्शुक्लयजुर्वेदे न पठ्यन्ते। तथा च सूक्तमिदं शांखायनशाखायामेव पठितमिति।

९. ॐत्र्यम्बकं यजामहे इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. ७/५९/१२ स्थले उपलभ्यते।

१०. ॐसुहस्रशीर्षा पुरुषः इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. १०/९० स्थले उपलभ्यते।

११. ॐअहं रुद्रेभिः इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. १०/१२५ स्थले उपलभ्यते।

१२. ॐन तमंहो इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. १०/१२६ स्थले उपलभ्यते।

१३. आशुः शिशानो इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. १०/१०३।१-१३, १५ स्थले उपलभ्यते। अत्र विशेषो यत्कोशे सूक्तस्य 'असौ या सेना' इति चतुर्दशः मन्त्रश्शाकलशाखायां न पठ्यते। एष शांखायनशाखापाठः स्यात्।

१४. ॐविभ्राड् बृहत् इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. १०/१७० स्थले उपलभ्यते।

१५. ॐकद्रुद्राय प्रचेतसे इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. १/४३।

१६. ॐइमा रुद्राय इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. १/११४।

१७. ॐआ ते इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. २/३३।

१८. ॐइमा रुद्राय स्थिरधन्वने इति सूक्तम् ऋ.शा.पा. ७।४६।

१९. ॐ सोमारुद्रा धारयेथा इति च सूक्तम् ऋ.शा.पा. ६।७४ इत्यत्रोपलभ्यन्ते।

एतदनन्तरं तत्तत्सूक्तात् काँश्चन संगृहीतान् अपि मन्त्रानुच्चारयेदिति शाङ्खायनरुद्रपरिशिष्टोक्ता व्यवस्था वर्तते। ते मन्त्राः यथा-

२०. जराबोध इति मन्त्रः ऋ.शा.पा.१।२७।१०।

२१. नमो महद्भ्यो इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. १।२७।१३।

२२. रुद्राणामेति इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. १।१०१।७।

२३. प्र वः इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. १।१५५।१।

२४. आवो राजान इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. ४। ३।१।

२५. कद्धिष्ण्यासु वृधसानो इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. ४।३।१।

२६. हंसः शुचिषद्वसुः इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. ४।४०।५।

२७. कथामहे रुद्रियाय इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. ५।४१।११।

२८. तमु ष्टुहि यः इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. ५।४२।११।

२९. भुवनस्य पितरं इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. ६।४९।१०।

३०. रथीतमं इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. ६।५५।२।

३१. रुद्रस्य ये इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. ६।६६।३।

३२. अस्मे रुद्रा मेहना इति मन्त्रः ऋ.शा.पा.८।६३।१२।

३३. प्र वोऽच्छा रिरिचे इति मन्त्रः ऋ.शा.पा. १०।३२।५।

३४. ॐ त्र्यम्बकम् इति च मन्त्रः ऋ.शा.पा. ७।५९।१२ स्थले उपलभ्यन्ते।

दौर्भाग्यादस्मद्धस्तलेखे तु रुद्राणामेति ऋ.शा.पा. १।१०१।७। आवो राजान ४। ३।१।, कद्धिष्ण्यासु ४।३।१।, अस्मे रुद्रा ८।६३।१२। इति चत्वारो मन्त्रा एवोपलभ्यन्ते। तथापि संपाद्यमाने ग्रन्थे यथोक्तक्रमेण सूक्तानि उपस्थापितानि सन्ति। तथा हि शास्त्रोक्तक्रमेण संरक्षितानां शाङ्खायनशाखोक्त-रुद्रसूक्तानां पुरातनेषु कोशेषु दर्शनात् परम्परया रक्षितत्वाच्च अस्मद्धस्तलेखविषयिण्यप्रामाण्यशङ्कानवकाशैव जाता।

कालप्रभावादभ्यासशैथिल्यात् प्रमादाद्वा व्याहृतयः केचन मन्त्राश्च कोशे नोल्लिखिताः। एते सर्वे मन्त्राः शाकलसंहितायाः तत्तत्स्थानादाहृत्य ग्रन्थसंस्करणं सकलं स्यादिति धिया लुप्यमानाया आदित्यपरम्परायाः मर्यादारक्षार्थं च संस्कृतेऽस्मिन् ग्रन्थे कोष्ठे कृत्वा योजिताः।

इत्थं शाङ्खायनीयरुद्रजपस्य त्रयो विभागाः सन्ति। प्रथमे भागे पूर्वाङ्गरूपेण सावित्रीऋग्, आपोहिष्ठेतिसूक्तं, चत्वारो शुद्धवत्यः मन्त्राः मातृकायां पठ्यन्ते। ऋग्विधानोक्तः –

शुची॑ वो ह॒व्या म॑रुतः शुची॑नां॒ हिनो॑म्यध्व॒रं शुचि॑भ्यः।
ऋ॒तेन॑ स॒त्यमृ॒तसाप॑ आय॒ञ्छुचि॑जन्मा॒नः शुच॑यः पाव॒काः॥

ऋ.शा.पा. ७।५६।१२।

इति मन्त्रः अस्मत्कोशे नोपलभ्यते। पाठपरम्पराया आग्रहाद्वा न पठितः। अत्र तु शुची॑ वो ह॒व्या० इति स्थाने सस्रुशि॒स्तद॑पसो० इति अथर्ववेदे (६।२३।१) पठितो मन्त्रः पठ्यते। मन्त्रभेदकारणं तु नापरोक्षं तथापि कोशमर्यादामनतिक्रम्य ऋग्विधाने संकेतितः मन्त्रोऽत्र पृथक्तयोपस्थापितः। द्वितीये भागे अग्निमीडे० इत्यादि, तृतीये च भागे प्रथमभागस्य पुनरावर्तनमेव भवति।

अत्र शाखामिश्रत्वं नाशङ्कनीयम् एकस्याः संहितायाः शाखान्तरे सामान्यानाम् ऋचामानुपूर्वी प्रायेण न भिद्यते। संहितान्तर एव भिद्यते। तथा च ऋग्वेदस्य मन्त्रः ऋग्वेदस्य शाखान्तरेऽविकलानुपूर्वीक एव स्यात्।

अथास्य कोशस्य लेखन तिथिः संवत् १७६५ वर्षे मार्गशीर्ष वदि ८ भौमे इति पुष्पिकायामुल्लिखितः तथा हि १७०८ ईसवीये, प्रतिरियं पूर्णतामगादिति निवेद्य विरमति–

विदुषामनुज्ञः

प्रकाशपाण्डेयः

ऋग्वेदशाङ्खायनशाखाधृत-

रुद्राध्यायग्रन्थपरिचय

वैदिकसंप्रदाय एवं ऋग्वेद की शाङ्खायनशाखा

आदि काल में वेद का प्रादुर्भाव दो भिन्न सम्प्रदायों के रूप में हुआ था। प्रथम 'ब्रह्मसम्प्रदाय' एवं द्वितीय 'आदित्यसम्प्रदाय'। भारतीय परम्परा स्वीकार करती है कि इन दोनों सम्प्रदायों में अखिलरूप से सम्पूर्ण वेद की प्राथमिक सत्ता थी । यह गर्व की बात है कि आज विश्वभर में वैदिकसंहिताओं के अनेक मुद्रित संस्करण उपलब्ध हैं एवं श्रुतिपरम्परा से उन संहिताओं का अध्ययन-अध्यापन का क्रम अत्यन्त क्षीण हो चुका है। तथापि आज भी भारत में कहीं न कहीं ये वैदिकसंहिताएँ गुरुमुख से सुनकर कण्ठस्थ की जाती हैं। उनके पारम्परिक स्वरों से युक्त उच्चारण प्रक्रिया को सुरक्षित रखने का तपः पूर्ण प्रयास किया जाता है।

वेद के अध्ययन की यह परम्परा वेदों के समान ही प्राचीन हैं। इस तथ्य को वेद की अपौरुषेयता के प्रमापक के रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है। क्योंकि वेदों की रचना किसने की, कैसे की, इसका ज्ञान सभी उपाय करके भी नहीं किया जा सका है। फिर भी अत्यन्त श्रद्धापूर्वक वेदों का श्रुतिपरम्परा से अध्ययन एवं अध्यापन आज भी किया जाता है तथा उच्चारण की वही प्रक्रिया अपनाई जाती है जो किसी अज्ञात प्राचीन काल में अपनाई गई थी। जब ऐसी परम्परा लोक में स्वीकृत भी है, जीवित भी, जिसके कर्ता का कोई ज्ञान नहीं है। तब यदि उसके विषय में यह कहा जाता है कि वेद किसी शरीरधारी मानव की रचना नहीं है तो वह उचित ही है। शरीर में व्याप्त चेतना के कारण

हम अनवरत अस्तित्व का अनुभव करते रहते हैं। किन्तु यह कोई भी अब तक नहीं बता सका है कि यह आत्मा या चेतना कैसे बनी, या किसने बनाई। जिस प्रकार आत्मा के इस स्वभाव के कारण वह मानव निर्मिति नहीं मानी जाती है, अपितु अनादि एवं अनश्वर मानी जाती है। उसी प्रकार वेद भी अनादि और अनश्वर हैं।

इस अनादि वेद के सम्प्रदायों के विभाजन के विषय में वराह पुराण में एक रहस्यपूर्ण रूपकात्मक इतिहास बताया गया है–

'सृष्टि के आदि में ज्ञानविरोधी शंखासुर या हयग्रीव नामक राक्षस ने ज्ञानरूप वेद का आहरण कर लिया था। भगवान् विष्णु ने उस दानव का वध करके वेद को सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को वापस दे दिया। इस घटना के बाद वेद की सुरक्षा सुनिश्चित करने की दृष्टि से ब्रह्मा ने उसके दो प्रतिरूपात्मक भाग किए। एकभाग को उन्होंने आदित्य के पास सुरक्षित कर दिया तथा द्वितीयभाग को अपने मानस पुत्रों अंगिरा, भृगु, अत्रि आदि ऋषियों को वेदोक्त अध्ययनविधि से पढ़ा दिया। उन सभी ऋषियों ने भी अपने शिष्य-प्रशिष्य पुत्र, पौत्र आदि को योग्यतानुसार अध्यापन किया एवं वेद की ज्ञानधारा चलती रही।

काल के प्रभाव से मनुष्यों में विशाल वेदराशि का अलिखित रूप में धारण रखना एवं यथावत् मौखिक उपस्थापन करना असम्भव हो चला था। तब द्वापर युग के अन्तिम चरण में उत्पन्न भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास ने मूल वेद को चार संहिताओं में विभाजित किया तथा अपने चार शिष्यों में प्रत्येक को एक-एक संहिता का अध्यापन किया। पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद एवं सुमन्तु को अथर्ववेद का ज्ञान दिया। इन शिष्यों द्वारा साक्षात् वेदव्यास से पढ़ी गई ये चारों संहिताएँ **'ब्रह्मसम्प्रदाय'** के अन्तर्गत परिगणित हैं। क्योंकि इसके आदि प्रवाचक ब्रह्मा थे। वेदव्यास के इन चारों शिष्यों ने अपने शिष्यों-प्रशिष्यों को प्रशिक्षित किया एवं कुल मिला कर ब्रह्मसम्प्रदाय के बीस प्रमुख प्रवाचक हुए।'

प्राचीनकाल में ही भगवान् योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने 'विदग्ध शाकल्य' से ऋग्वेद का अध्ययन किया। किन्तु किसी कारणवंश गुरु के साथ विवाद हो गया तथा याज्ञवल्क्य ने विदग्धशाकल्य से प्राप्त ऋग्वेद का ज्ञान उन्हें वापस कर दिया। कुछ समय बाद अपने मातामह महर्षि वैशम्पायन की शिष्यता ग्रहण की तथा उनसे यजुर्वेद का अध्ययन किया। किन्तु किसी कारण वश उनसे भी विवाद हो गया और उन्होंने यजुर्वेद का ज्ञान भी गुरु को वापस कर दिया। उस प्रकार वेदविहीन अवस्था में योगीश्वर याज्ञवल्य ने प्रतिज्ञा की कि,

'मैं अब किसी मानवदेही को अपना आचार्य नहीं बनाऊँगा'।

इस निश्चय के साथ उन्होंने तपोबल से भगवान् आदित्य को प्रसन्न किया तथा उनसे चारों वेदों का विधिवत् अध्ययन किया। इस वेदज्ञान के प्रचार एवं उपयोग के लिए गुरु की आज्ञा लेकर योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने शांखायन को ऋग्वेद, काण्वमाध्यन्दिन आदि शिष्यों को यजुर्वेद, सामश्रवा अथवा कौथुम को सामवेद एवं शौनक को अथर्ववेद का अध्यापन किया। यह वेद चतुष्टयी 'आदित्यसम्प्रदाय' है। आज उपलब्ध वैदिक संहिताएँ दोनों सम्प्रदायों से सम्बद्ध हैं। इसी कारण इनकी पाठ–परम्परा, उच्चारण, हस्त–संचालन आदि में दोनों सम्प्रदायों का मौलिक अन्तर दिखाई देता है।

शांखायन के पश्चात् आदित्यसम्प्रदायानुगत ऋग्वेद के कोई प्रमुख प्रवाचक नहीं हैं। अतः ऋग्वेद की जिन २१ शाखाओं की चर्चा पुराणों तथा महाभाष्य आदि ग्रन्थों में होती है उनमें शाकल आदि २० 'ब्रह्म सम्प्रदाय' की शाखाएँ हैं एवं इक्कीसवीं शांखायन प्रवर्तित शाखा 'आदित्यसम्प्रदाय' की है।

शाखा-पदार्थ

शाखा शब्द का बहुधा प्रयोग वैदिक संहिताओं के सम्बन्ध में होता है। उस शब्द के विषय में कुछ पारम्परिक बातें यहाँ प्रासङ्गिक

प्रतीत होती हैं। वैदिक परम्परा 'वेदैकदेश' या वेद के एक स्वयं में पूर्ण भाग को शाखा शब्द से सम्बोधित करती रही है। 'वेद का एक भाग' से ऐसा नहीं समझना चाहिए कि किसी के द्वारा कुछ चुने हुए सूक्तों को भी शाखा कहा जा सकता है। अपितु शाखा शब्द को स्पष्टतः इस प्रकार समझना चाहिए–आदि काल में ब्रह्मा ने एक 'वेद' नामक शब्दात्मक आनुपूर्वी वाले सभी कल्पों में वर्तमान, अविनाशी, सदा मङ्गलरूप ज्ञानराशि का प्रकटन किया था। द्वापर के अन्त में भगवान् वेदव्यास ने ऋग्, यजुः, साम एवं अथर्व रूप में उसकी सामग्री सम्पादित करके प्रवचन किया। इस प्रकार मूलवेद की सामग्री चार परस्पर भिन्न रूपों एवं क्रमों में प्रकट हुई। अतः मूलवेद के सापेक्ष ऋग्, यजुः आदि संहिताएँ उसकी शाखाएँ हैं। क्योंकि ये संहिताएँ सम्पूर्णवेद का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं।

इसी प्रकार पूर्वोक्त मूल प्रवाचकों एवं प्रत्येक संहिता के अलग अलग प्रवाचकों ने अपने पास संहिता के जिस स्वरूप की सुरक्षा की तथा प्रचार किया। उनमें व्यास प्रणीत ऋग्वेदादि संहिता अपनी सम्पूर्णता में नहीं हैं। कहीं मन्त्र क्रम में, कहीं सूक्त क्रम में, कहीं सामग्री में, कहीं उच्चारण प्रक्रिया में भेद है। अतः ऋग्वेद आदि व्यास प्रणीत या याज्ञवल्क्य प्रणीत संहिताओं के सापेक्ष शाकल, बाष्कल, शांखायन आदि भी शाखाएँ हैं। ध्यातव्य यह है कि प्रत्येक शाखा की संहिता स्वयं में पूर्ण होती है तथा मूलतः उसीके मन्त्र यज्ञ का अंग बनते हैं।

वस्तुतः आदि प्रवाचकों में से प्रत्येक ने मूलवेद के ऋग्वेद आदि विभागों के सभी स्वरूपों को यथाक्रम सुरक्षित रखा एवं उसका प्रचार किया इस कारण उन्हीं के नाम से शाखाएँ अभिहित की जाती हैं।

शांखायन-रुद्राध्याय

प्रस्तुत ग्रन्थ ऋग्वेद की शंखायनशाखा से सम्बद्ध है। हिलेब्राण्ट ने शांखायनश्रौतसूत्र के प्राक्कथन में (पृष्ठ १ पर) महार्णव नामक ग्रन्थ से श्लोक उद्धृत किया है जिससे ज्ञात होता है कि शांखायनशाखा की प्रतिष्ठा एवं प्रचार प्राचीन काल से ही उत्तर गुजरात में रहा है। कौषीतकि गोत्र के लोग इस शाखा का अभ्यास करते थे।

आज भी उत्तर गुजरात में ही शांखायनशाखा के अभ्यासियों की सत्ता है। इसी प्रदेश से समागत राजस्थान के बाँसवाड़ा गाँव में निवास करने वाले पण्डित हर्षदलाल नागर के पास से इन्दिरागाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र के कलाकोश विभाग के अध्यक्ष आचार्य गयाचरणत्रिपाठी जी के नेतृत्व में केन्द्र के विद्वानों ने इस हस्तलेख की छायाप्रति प्राप्त की। इस विलुप्त परम्परा के अबतक ज्ञात एकमात्र शांखायनशाखाभ्यासी परिवारजनों से हस्तमुद्राओं सहित पारम्परिक उच्चारण करते हुए दृश्य-श्रव्य का अंकन कराकर केन्द्र ने सी.डी. भी बनाई है जो इस विलुप्त वैदिकपरम्परा की वास्तव में रक्षा करेगी।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि शांखायनशाखाभ्यासी नागरबन्धु ऋग्वेद के उच्चारण के साथ हस्तमुद्राओं का उसी प्रकार संचालन करते हैं जिस प्रकार शुक्लयजुर्वेद के उच्चारण काल में किया जाता है। आज कल कुछ लोगों को ऐसा भ्रम होगया है कि हस्तमुद्राओं का संचालन उत्तरभारत की विशेषता है। हस्तमुद्रासंचालन के बिना विशुद्ध स्वरों के साथ उच्चारण करना दक्षिण भारत की विशेषता माना जाता है। तथ्य यह नहीं है। वर्तमान में उपलब्ध ऋग्वेद शाकलशाखा की संहिता है। शाकलशाखा एवं दक्षिण में प्रधानतया प्रचलित तैत्तिरीययजुर्वेद ब्रह्मसम्प्रदाय से संबद्ध हैं। ब्रह्मसम्प्रदाय में हस्तमुद्रासंचालन का विधान न होने के कारण ये दोनों संहिताएँ हस्तमुद्रासंचालन विहीन अभ्यसित होती हैं। किन्तु ऋग्वेदीय शांखायनसंहिता एवं माध्यन्दिनशुक्लयजुर्वेद आदित्यसम्प्रदाय

से संबद्ध हैं दोनों में हस्तमुद्रासंचालन का विधान है। वस्तुतः यह भेद उत्तर एवं दक्षिण भारत के उच्चारण का नहीं है। अपितु वेद के प्राचीनतम सम्प्रदायों का वैशिष्ट्य है।

यह दुःखद सत्य है कि भारत में वैदिक संहिताओं के पारम्परिक रूपों के ज्ञाता अब अंगुलिगण्य ही रह गए हैं। उसमें शांखायनशाखा का तो मानों लोप ही हो गया है। इन्दिरागाँधी राष्ट्रीय कलाकेन्द्र का कलाकोश विभाग प्रयास पूर्वक इस शाखा के अध्यायी को प्रकाश में लाया है। मुझे शांखायनरुद्राध्याय की प्रकाशनीय प्रति निर्माण करने की पुण्यमयी प्रेरणा एवं पाण्डुलिपि आदरणीय गुरु आचार्य गयाचरणत्रिपाठी जी से मिली है। यह ग्रन्थ सभी सत्पात्रों एवं शिवभक्तों के लिए उपयोगी बने इस भाव से मन्त्रों का भाषा-अनुवाद पूर्वक संपादन करने का प्रयास किया गया है। परमशिव के अनुग्रह से शांखायनरुद्राध्याय की प्रकाशित प्रति सुलभ हो रही है।

रुद्र एवं रुद्रयाग

देवीभागवतमहापुराण कहता है कि यज्ञ के तीन प्रकार होते हैं– १. वैदिक याग या श्रौत याग। २. तान्त्रिक याग ३. मिश्रयाग जिसमें वैदिक एवं तान्त्रिक दोनों विधानों का मिश्रित रूप होता है। शिव की उपासना अत्यन्त श्रद्धा के साथ पूरे भारत में वैदिक-तान्त्रिक विधि से की जाती है।

परमेश्वर शिव को वेद रुद्र नाम से अभिहित करता है। रुद्र विश्वरूप हैं। प्रत्येक प्राकृतिक तत्त्व उन्हीं की मूर्ति हैं। शतपथ ब्राह्मण के छठे काण्ड के प्रथम प्रपाठक में भगवान् वेद रुद्र के सर्वमयत्व का प्रकाशन करते हुए अग्नि, जल, वनस्पति, वायु, विद्युत्, पर्जन्य, चन्द्र एवं सूर्य के रूप में उनकी प्रतिष्ठा करते हैं।

शिव की इन मूर्तियों या स्वरूपों का वर्णन पुराणों में भी प्रमुखता के साथ हुआ है। कूर्मपुराण (अध्याय दस) में वर्णन है कि ब्रह्मा

अत्यन्त दीर्घ काल तक तप करने के बाद भी सृष्टि के आरंभण में सफल नहीं हुए। तब उन्हें क्रोध हुआ। उस अवस्था में उनके मुख से प्राण के रूप में भगवान् शिव प्रकट हुए एवं अत्यंत भीषण रुदन किया। ब्रह्मा ने उन्हें सूर्य, जल, धरती, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षितब्राह्मण एवं चन्द्रमा। इन आठ तत्त्वों से उनका तादात्म्य करते हुए उन्हें रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र एवं महादेव इन नामों से अभिहित किया। इसी प्रकार का वर्णन पद्मपुराण एवं विष्णुपुराण के साथ-साथ कालिदास आदि महाकवियों ने भी किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय वैदिक तथा पौराणिक परम्परा शिव को सर्ग स्वरूप एवं कालस्वरूप परमचेतना स्वीकार करती है, अथवा देश(Space) एवं काल(Time) का परमचेतनात्मक अद्वैतरूप मानती है। शैवदर्शन का सम्पूर्ण सिद्धान्त शिव को शरीरी एवं विश्व को शरीर स्वीकार करने पर आधारित है।

इस परमशिव की स्तुतियों का उच्चारण सभी वेदाध्यायी अनेक श्रौत एवं गृह्य कर्मों में नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य तीनों दृष्टियों से करते है। जब भी श्रौत या गृह्य कर्म में रुद्रकलश की स्थापना होती है अथवा गोविवाह या वृषोत्सर्ग कर्म किया जाता है तब, तथा आधिभौतिक आधिदैविक उपसर्गों की स्थिति में रुद्रसूक्तों के जप का विधान शास्त्रों में किया गया है।

मेरुतन्त्र में वैदिक रुद्रसूक्तों के दो प्रकार के प्रयोग बताए गए हैं। प्रथम आवर्तन प्रयोग अपनी शाखा से सम्बद्ध शास्त्रों में बताए सूक्तों के ही पाठ करने से संबद्ध है। अपनी शाखा से भिन्न शाखा के मन्त्रों को यदि कोई भी व्यक्ति प्रयोगकाल में पढ़ता है तो यज्ञ यजमान के लिए हानिकारक होगा। यदि कोई ऐसा याजक है जो अपनी पारम्परिक वैदिक शाखा का स्वाध्यायी नहीं है या उसने गुरु से नहीं पढ़ा है। कोई ऐसा याजक है जिसे अपनी शाखा का ज्ञान ही नहीं है। तब याग के लिए

जिस पुरोहित का वरण किया गया है उसकी अपनी शाखा के अनुसार ही अनुष्ठान संपन्न होगा ऐसा मेरुतन्त्र (१२।१४८) का विधान है।

मेरुतन्त्र (१२।१४५-४७) इस विषय में दूसरा महत्त्वपूर्ण विधान करता है कि यदि किसी याजक की शाखा में रुद्राध्याय विहित नहीं है अथवा उसकी शाखा आज लुप्त है, कहीं भी पारम्परिक रीति से नहीं पढ़ी-पढ़ाई जाती, तब उसको केवल तैत्तिरीयसंहिता में विहित रुद्रसूक्तों का पाठ करना या कराना चाहिए। माध्यन्दिनसंहिता आदि अन्य किसी शाखा की संहिता से मन्त्रों को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दो शाखाओं से मन्त्रों का संकलन करके किसी को भी पाठ नहीं करना चाहिए। अन्यथा यज्ञ हानिकारक होगा।

सभी उपलब्ध शाखाओं के श्रौत-गृह्य-परिशिष्ट आदि सूत्रों में रुद्रविधान है तथा उसी के अनुसार रुद्रयाग करने से शास्त्रोक्त अभीष्ट सिद्धि होती है।

स्मृतिकौस्तुभकार आपदेव ने ऋग्वेदीय शांखायन शाखा के रुद्रजप का विधान शांखायन गृह्यपरिष्ट एवं ऋग्विधान के प्रमाणों को उपस्थापित करते हुए अत्यन्त स्पष्टता से किया है। शांखायनों के रुद्रजप का दो विधान हैं। प्रथमविधि में रुद्रकलश पर 'कद्रुद्राय, इमारुद्राय, या ते पितः, इमारुद्राय स्थिरधन्वने' इन चार सूक्तों एवं त्र्यंबकं० मन्त्र का पाठ करने का विधान है। यद्यपि ये सूक्त एवं मन्त्र शाकलशाखा में भी उपलब्ध है किन्तु उच्चारण में भेद होने से शांखायन ऋग्वेद से ही सूक्त ग्रहण करने चाहिए। द्वितीय पद्धति में प्रकृत ग्रन्थ के सभी सूक्तों का विधान किया गया है। अग्निमीडे० से लेकर त्र्यम्बकं० तक के सभी सूक्तों एवं मन्त्रों का विधान उसी क्रम से है जिस क्रम से ये हस्तलेख में प्राप्त होते हैं। ये मूल रुद्रपाठ के मन्त्र हैं। इसके अतिरिक्त शांखायनों के सभी श्रौत कर्मों के आदि एवं अन्त में सप्तव्याहृति सहित सावित्री मन्त्र, आपोहिष्ठा०,

शुचीवो०, एतोन्विन्द्र० आदि शोधक मन्त्र, अघमर्षणसूक्त, शंवतीसूक्त एवं पावमानी सूक्तों का उच्चारण अनिवार्यतः विहित है। प्राप्त हस्तलेख में ये सभी सूक्त एवं मन्त्र अग्निमीडे० के पूर्व ही पढ़े गए हैं। केवल शोधक मन्त्रों में ऋग्विधानोक्त शुचीवो० के स्थान पर सस्त्रुशि० मन्त्र मिलता है।

इन सभी सूक्तों एवं मन्त्रों की शाकल शाखा के ऋग्वेद में जो स्थिति बनती है। वह संस्कृत प्राक्कथन में है। अन्तिम सूक्त में प्रथम से चौथे मन्त्र तक शाकलपाठ के ६।७४।१-४ तक उपलब्ध हैं। किन्तु उसके बाद पढ़े गए (५-१९ तक के) मन्त्रों में त्र्यम्बकं० के अतिरिक्त केवल चार मन्त्र प्रस्तुत हस्तलेख में पढ़े गए हैं। शेष मन्त्रों को स्मृतिकौस्तुभ में दिए गए प्रतीक के अनुसार ऋक्संहिता के यथोचित स्थलों से लेकर शांखायन रुद्रजप के प्राचीन विधि की पूर्णता के लिए इस संस्करण में यथोक्त स्थान पर रखा गया है। क्योंकि ये मन्त्र मूलहस्तलेख में नहीं हैं अतः उन्हें कोष्ठकों में रखा गया है।

प्राप्त हस्तलेख में कई अशुद्धियाँ हैं। अधिकतर अशुद्धियाँ लिपिकीय प्रमाद एवं उच्चारण के स्थानीय विशेषताओं के कारण हैं। इनको यथास्थान, यथामति शुद्ध किया गया है। इसी प्रकार स्वर संबन्धी विशेषताओं को पादटिप्पणी में यथा स्थान प्रदर्शित कर दिया गया है।

हस्तलेख की तिथि एवं कृतज्ञताज्ञापन

हस्तलेख की पुष्पिका में 'संवत् १७६५ वर्षे मार्गशीर्ष वदि ८ भौमे' उल्लिखित है तदनुसार ईसवीय सन् १७०८ में यह हस्तलेख पूर्ण हुआ था। यह हस्तलेख बाँसवाड़ा(राजस्थान) नगर निवासी विद्वद्वर पं. श्री हर्षद नागर के घर से प्राप्त हुआ है। अतः संपादक उनके तथा उनके परिवार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता है।

प्रकाश पाण्डेय

अथ

ऋग्वेदीयः शाङ्खायनरुद्राध्यायः

॥ सिद्धम् ॥

॥ॐ नमः श्रीगणेशाय॥

प्रथम सूक्त

श्रीऋग्वेदीयरुद्रजपस्य ऋषिदेवताछन्दांसि॥ तद्यथा। ॐकारस्य ब्रह्माऋषिरग्निर्देवता दैवीगायत्री छन्दः भूरादिव्याहृतीनां यथाक्रमं विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजगौतमात्रिर्वसिष्ठकश्यपा ऋषयः अग्निवायुसूर्य-बृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः। गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्ति-स्त्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांसि॥ तत्सवितुरिति ॥[1]

[2]ॐ भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं,
ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥१॥

मैं देदीप्यमान सविता के उस वरणीय तेज का ध्यान करता हूँ, जो हम सभी को धारणात्मिका बुद्धि की ओर प्रेरित करे।

---

१. ऋग्वेद शाकल शाखा पाठ (ऋ.शा.पा.) ३।६२।१०।

२. व्याहृतियाँ ऋग्विधान की विधि का अनुसरण करते हुए दी गई हैं। हस्तलेख में व्याहृतियों के ऋषि देवता आदि का कीर्तन उनके उच्चारण का सङ्केतक है।

द्वितीय सूक्त

आपो हिष्ठेति त्रिशिरा: सिन्धुद्वीपो[१] वा ऋषि: आपो देवता। गायत्री[२] छन्द:[३]॥

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे॥१॥

ये जल विश्वव्यापक हैं एवं सुखदाता हैं। इसी मूल कारण के बल पर जल हमें ऊर्जा ग्रहण करने के योग्य बनाएँ। ये जल हमें महान् एवं रमणीय दृष्टि युक्त बनने के योग्य बनाएँ।

यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न:।
उशतीरिव मातर:॥२॥

हे जलतत्त्व! आपका जो परम कल्याणकारी रस है, हमें उसका पात्र बनाएँ। हमें वह रस उसी प्रकार प्रदान करें जिस प्रकार माताएँ अपने पुत्रों के पोषण के लिए परम कल्याणकारक रस अपने

---

१. त्वष्टा का पुत्र त्रिशिरा। राजा अम्बरीष का पुत्र सिन्धुद्वीप।

२. इस सूक्त के ईशाना.....प्रतिष्ठा: गायत्री; आप: पृणीत.....वर्धमाना गायत्री; इदमाप:...एवं आपो....ये दोनों अन्त्य मन्त्र अनुष्टुप् छन्द में हैं। शेष पाँच मन्त्र गायत्री छन्द में हैं।

३. इस सूक्त का विनियोग आपस्तम्ब श्रौतसूत्र ५। २० में इस प्रकार है– 'आपो हि सिन्धुद्वीपो वाम्बरीष आपं गायत्रं द्व्यनुष्टुबन्तं पञ्चमी वर्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठेति। गत: सूत्रविनियोग:॥' सूक्त के प्रथम नौ मन्त्र ऋ.शा. पा. १०। ९। १-९। पर हैं। किन्तु दसवाँ मन्त्र संख्या अथर्ववेद ६।२३।१ पर पठित है यह ऋ.शा.पा. में नहीं पढ़ा जाता। इसके ऋषि शन्ताति, एवं देवता आप: बताए गए हैं।

दूध के रूप में प्रदान करती हैं।

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः॥३॥

हे जलतत्त्व! जिन दोषों को नष्ट करने के लिए आप क्रियाशील हैं। हम उन दोषों को दूर करके परिपूर्णता प्राप्त करें। हे जलतत्त्व! हमें एक नए प्रकार का जीवन प्रदान करें।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवंतु पीतये।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः॥४॥

हे दिव्यजल! हमारे इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति के लिए आप कल्याणकारी बनें। जो जल हमारी ओर स्त्रवित हों वे भी कल्याणकारक हों।

ईशाना वार्याणां क्षयंतीश्चर्षणीनां।
अपो याचामि भेषजं॥५॥

हे जलतत्त्व! आप सभी प्रकार के अभीप्सित पदार्थों के स्वामियों को, सभी प्रकार के प्राणियों को एवं जल से उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों को अस्तित्व में रखते हैं। हम आप से स्वास्थ्य कारक गुणों की याचना करते हैं।

[१]अप्सु मे सोमो अब्रवीदुंतर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवं॥६॥

---

१. ऋ.शा.पा. १/२३/२०-२३ पर भी 'अप्सु.....वर्चसा' तक ४ मन्त्र पठित हैं। अप्सु....के चतुर्थ पाद के रूप में 'आपश्च विश्वभेषजी' पठित है। मन्त्र संख्या ५-७ में सर्वत्र श के स्थान पर ऋ.शा.पा. में ष पठित है।

सोम ने मुझे बताया था कि जल के भीतर सभी प्रकार के औषधीय गुण हैं। यही तत्त्वज्ञान सोम ने सम्पूर्ण संसार को सुख प्रदान करने वाले अग्नि विशेष को भी दिया था। अतः ऋषि जल से कहते हैं कि–

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ममं।
ज्योक् च सूर्यं दृशे॥७॥

हे जलतत्त्व! आप मेरे समस्त रोगों के विनाश की शक्ति अपने में उत्पन्न करें जिससे मैं बहुत समय तक सूर्य का दर्शन कर सकूँ या बहुत दिनों तक जीवित रहूँ।

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतं॥८॥

मैंने यदि द्रोह पूर्वक कार्य किया हो अथवा किसी सज्जन को दुर्वचन बोला हो अथवा उसका अपकार किया हो अथवा असत्य बोला हो तो मेरे इन सभी प्रकार के दुरितों अर्थात् मन को मलिन करने वाले क्षुद्रपापों को, आप बहा ले जाएँ।

आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा॥९॥

हे जलतत्त्व! आज मैं जल में प्रविष्ट हूँ। सर्वरोग विनाशक रस से सिक्त हूँ। हे जल को धारण करने वाली चेतना! इस प्रकार सम्पूर्ण स्नान कर चुके मुझको अपने तेज से युक्त कर दो।

[1]सस्त्रुशिस्तदंपसो दिवानक्तं च स स्त्रुषीः।
वरेण्य क्रतुरहमा देवीरवसे हुवे॥१०॥

मैं तपः द्वारा ग्रहण करने योग्य यज्ञ की ओर रात दिन अजस्र रूप से प्रस्रवित होने वाले दिव्य-जल का सुरक्षा के लिए आवाहन करता हूँ।

तृतीय सूक्त[2]

तिरश्च इन्द्रोऽनुष्टुप्।

ॐ एतोन्विंद्र स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वानममत्तु॥१॥

ऋषिगण आपस में कह रहे हैं कि-हम अब निर्मल प्रशंसा वाक्यों से, निर्मल स्तुतियों के द्वारा शोधित इन्द्र का स्तवन करते हैं। निर्मल स्तुतियाँ उन्हें बलशाली बनातीं हैं। आशीः या पवित्र भावों से युक्त सोम उनको बली बनाएँ।

---

१. ऋग्विधान में इस मन्त्र के स्थान पर 'शुचीं वो हव्या मरुतः शुचीनां हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः। ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचि जन्मानः शुचयः पावकाः॥' (ऋ.शा.पा. ७।५६।१२) ऋक् पढ़ने की व्यवस्था है।

२. मन्त्र संख्या १-३ (ऋ.शा.पा. ८।९५।७-९ पर उपलब्ध)तीनों मन्त्रों के विषय में सायणाचार्य शाट्यायनब्राह्मण से एक इतिहास का उल्लेख करते हैं-'वृत्र आदि राक्षसों के बध के बाद, इन्द्र स्वयं को अशुद्ध मान रहे थे। उन्होंने ऋषियों से अपने शोधन के लिए कहा। ऋषियों ने शुद्ध करने वाले इन्हीं साममन्त्रों का दर्शन किया तथा उनका परिशोधन किया।' यही मन्त्र (१-३) सामवेद १४०२-४ पर भी पढ़े गए हैं। ये सभी शोधक मन्त्र हैं।

इन्द्रं शुद्धो न आगहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः।
शुद्धोरयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः॥२॥

इन्द्र! हमारे प्रशंसापरक साम मन्त्रों से परिशुद्ध होकर यहाँ पधारें। साम से ही परिपूत शुद्ध मरुतों के साथ आएँ। हमारे पास आ कर हमें समृद्ध करें। आप निर्मल हैं तथा सोमग्रहण करने के योग्य हैं। अतः प्रसन्न हो जाएँ।

इन्द्रं शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि॥३॥

हे इन्द्र! हमें केवल शुद्ध धन ही प्रदान करें। यजमान को रमणीय समृद्धि प्रदान करें। आप शुद्ध हैं इसीलिए कर्म में बाधक वृत्र आदि तत्त्वों को नष्ट करते हैं। हम आपको साम मन्त्रों से परिशोधित करते हैं अतः आप हमें शुद्ध अन्न प्रदान करने की इच्छा करते हैं।

चतुर्थ सूक्त[1]

ऋतं चेति अघमर्षणः ऋषिः भाववृत्तो[2] देवता अनुष्टुप् छन्दः॥

ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥१॥

---

१. ऋ.शा.पा. १०। १९०। मधुच्छन्दा के पुत्र अघमर्षण ऋषि हैं। प्रथम मन्त्र विराडनुष्टुप् तथा द्वितीय अनुष्टुप् एवं तृतीय पादनिचृत् अनुष्टुप् छन्द हैं।

२. सायण भाववृत्त देवता का अर्थ मन्त्र में प्रतिपादित रात्रि आदि प्राकृतिक सृष्टि के भावों के रूप में करते हैं।

यथार्थ सङ्कल्प स्वरूप—ऋत, यथार्थ वाणी रूप—सत्य तथा शाश्वत धर्म, ब्रह्मा के उत्कृष्ट ज्ञान रूप—तप से उत्पन्न हुए। उसके बाद रात्रि एवं दिन उत्पन्न हुए। उसी से सर्वत्र व्याप्त जल से भरा हुआ महासागर उत्पन्न हुआ।

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥२॥

क्षारयुक्त महासागर की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर रूपी काल के विभाग उत्पन्न हुए। इस प्रकार ईश्वर दिन—रात आदि व्यावहारिक रूप में सृष्टि की रचना करते हुए सम्पूर्ण गतिशील संसार के सभी प्राणियों के स्वामी के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

सूर्याचंद्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥३॥

विधाता ने पूर्वकल्प की भाँति काल के विभागों के सङ्केतक—सूर्य एवं चन्द्रमा का निर्माण किया। इसी प्रकार धरती अन्तरिक्ष एवं प्रकाशलोक की रचना की।

पञ्चम सूक्त[1]

शंवतीनां वसिष्ठः ऋषिः वैश्वदेवः देवता त्रिष्टुप् छन्दः।

ॐ शंवतीः [2]पारयन्त्येतं तं पृच्छन्ति वचो यथा।
अभ्यानं[3] तं यमाकेतं[4] य एवेदमिति ब्रवत्॥१॥

जिस विधि से कल्याणमयी वाणी इस विश्वात्मक देव के विषय में जिज्ञासा करती हैं अर्थात् इनकी निकटवर्ती बनती हैं, उस सर्वत्र प्रकाशमान सर्वदा दानशील विश्वव्यापी देव को जो कोई भी सामान्य व्यक्ति "वह ऐसा ही है" यह कह देता है। जबकि उसको एक स्वरूप में नियत करके बताना असम्भव है।

जाया[5] कं नु पुरुस्पृहं भारती ब्रह्मवर्धिनी।
संजानाना महीमाता य एवेदमिति ब्रवत्॥२॥

किस सर्व अभिलषित तत्त्व को जानने वाली सर्वजननी माता भारती वेदमन्त्रों का विकास करती हैं, उस परमतत्त्व को जो कोई भी "ऐसा है" कह देता है।

---

१. सूक्त का १-३, ८, ९ मन्त्र ही मोक्षमूलर संस्करण के ऋ.शा.पा. खिल में पठित हैं। अवशिष्ट मन्त्र शांखायन शाखा के हैं।

२. 'पारयंत्येते' ऋ.शा.पा.।

३. शाकल शाखा के दो हस्तलेखों से 'अभ्यानं; अभ्यारं' पाठ मिले हैं।

४. 'केतुं' 'भासाकेषु' ऋ.शा.पा.।

५. 'युजा' ऋ.शा.पा.

इंद्रस्तत्किं[१] विभुं प्रभुं भानुमेयं सरस्वतीं।
येन सूर्यमरोचयद्येनेमे रोदसी उभे॥३॥

जिसने सूर्य को प्रकाश से परिपूर्ण कर दिया, जिसने द्युलोक या प्रकाशलोक एवं धरती का निर्माण किया, अनुशासित किया वह परम व्यापक, सर्वेश्वर, केवल ज्ञान के द्वारा प्रमाणित विद्या स्वरूप वाला तत्त्व क्या इन्द्र है?

शं वो भूमिः शं व आपः
शं वो भवन्तु मरुतस्वर्काः।
शं वः प्रजाभ्यः शर्मयन्तु पापं
शं वः पर्जन्यो अभिवर्षतु॥४॥

आप सभी प्राणिमात्र के लिए भूमि, जल, प्रसन्न वायु कल्याणकारक हों। सम्पूर्ण समाज के लिए कल्याणकारक हों। हर प्रकार के दोष का शमन करें। वर्षा के बादल समुचित रीति से सर्वत्र वर्षा करें।

शं व इन्द्रः शमितांता
शं वो भवन्तूषसो विभातीः।
शं वो वसवो रुद्रा आदित्याः संदन्तु
शं वो मित्रावरुणावश्विना शं॥५॥

---

१. 'स्तं किं' ऋ.शा.पा। ये सभी पाठ मैक्समूलर के संस्करण में खिलसूक्त १३ एवं उसकी पाद टिप्पणी में उपलब्ध हैं।

सर्वनियन्ता इन्द्र आप के लिए कल्याणकारक हों। प्रभा से परिपूर्ण उषाएँ आप सभी के लिए कल्याणमयी हों। वसुगण[1] रुद्रगण[2] एवं आदित्यगण[3] आप सभी के प्रति कल्याणकारी रूप में विराजमान रहें। मित्रावरुण एवं अश्विनीकुमार कल्याण करें।

शं वो विष्णुः प्रजया संरराणो
नु स्वधां कृणुहि लोके अस्मिन्।
शं वो भवन्तु भुवनस्य यस्पतिः
शं वो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥६॥

आप सभी के प्रति सन्ततियाँ प्रदान करते हुए विष्णु कल्याणमय हों। संततियों के माध्यम से इस सामाजिक जीवन में आप सर्वत्र तृप्ति फैलाएँ। इस धरती का जो स्वामी है वह मङ्गल करे। मनुष्यों एवं पशुओं सभी प्राणियों के लिए सभी देवतत्त्व कल्याणकारक बने रहें।

जुषस्वाग्ने अंगिरः काण्वमेध्यातिथिं
मा त्वा सोमस्य बर्बृहत्सुतासो[4] मधुमत्तमः॥७॥

---

१. आठ वसु— धरो ध्रुवश्च सोमश्च विष्णुश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ क्रमात्स्मृताः॥ इति॥

२. एकादश रुद्र(वैदिक)—
वाजश्च सत्यम् ऊर्क् च अश्मा च अग्निः अंशुः तथाग्निकः।
एका चैव चतस्रश्च त्र्यविः वाजा इति क्रमः॥
पौराणिक— अजैकपदहिर्बुध्नो विरूपाक्षः सुरेश्वरः।
जयन्तो बहुरूपश्च त्र्यम्बकोऽप्यपराजितः।
वैवस्वतश्च सावित्रो हरो रुद्रा इमे स्मृताः॥

३. द्वादश आदित्य—१. अर्यमा, २. अंश, ३. पूषा, ४. त्वष्टा, ५. सविता, ६. भग, ७. धाता, ८. विधाता, ९. वरुण, १०. मित्र, ११. इन्द्र, १२. उरुक्रम(विष्णु)।

४. 'सुतस्य' ऋ.शा.पा.।

हे काण्वमेधा के पुत्र अङ्गिरस् अग्नि! आप अतिथि को तृप्त करें। आपके लिए सोम के निर्गलित अतिशय मधुर रस हमारे एवं आपके लिए बृद्धिशाली हों।

[1]त्वामंग्ने अंगिरस्तम शोचस्वं देववीतंमः।
आ शंतम शंतंमाभिरभिंष्टिभिः।
शान्तिं स्वस्तिमकुर्वत॥८॥

हे श्रेष्ठ अङ्गिरस् अग्नि! आप इन यज्ञों, इष्टियों से परम कल्याणकारक बनते हुए, दिव्य स्वरूप होते हुए, सर्वत्र प्रकाशित हों। शान्ति एवं समृद्धि उत्पन्न करें।

शं वः कनिंक्रदद्देवः पर्जन्यो
अभिवंर्षत्वोषधयः प्रतिधीयताम्[2]।
शं नो द्यावांपृथिवी शं प्रजाभ्यः
शं नो अस्तु[3] द्विपदे शं चतुष्पदे॥९॥

गर्जन करते हुए, दानशील पर्जन्य सर्वत्र वर्षा करें। आप सभी के लिए कल्याणकारक हों। स्वास्थ्य रक्षा करने वाली वनस्पतियाँ अङ्कुरित हों। प्रकाशलोक एवं पृथिवीलोक हमारे लिए मङ्गल करें। सम्पूर्ण समाज के लिए कल्याण करें। मनुष्यों एवं पशुओं के लिए कल्याणकारक बनें।

---

१. 'त्वमंग्ने' ऋ.शा.पा.।

२. 'ओषधयः प्रतिधीयताम्' शाकल शाखा के खिल में पठित नहीं हैं। साथ ही ऋ.शा.पा. 'शं नः' के स्थान पर 'शं वः' शांखायन शाखा सम्मत पाठ है।

३. 'एधि' ऋ.शा.पा.।

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः
शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥१०॥

इन मन्त्रों द्वारा स्तवन के प्रभाव से इन्द्र एवं अग्नि का युगल रूप कल्याणकारक बन जाए। विधिपूर्वक प्रदान की गई हवि के प्रभाव से इन्द्र एवं वरुण की जोड़ी हम सभी के लिए कल्याणकारक हो जाए। आपके लिए और हमारे लिए इन्द्र एवं सोम की जोड़ी समृद्धि प्रदाता के रूप में कल्याण करे, इन्द्र एवं पूषा की जोड़ी अन्नभण्डार में वृद्धि करे।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु
शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः
शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु॥११॥

सभी ओजतत्त्व, सुन्दरी स्त्रियाँ एवं सम्पत्तियाँ अवश्य ही हमारे लिए कल्याणकारिणी हों। सत्य एवं संयम के लिए प्रशंसा वाक्य हमारे लिए कल्याणकारक हों। अनेक रूप में विद्यमान अर्यमा हमारे लिए कल्याणकारक बनें।

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु
शं न उरूची भवन्तु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः
शं नो देवानां सु हवानि संतु॥१२॥

तृप्तिकारक वचनों से सृष्टिकर्ता, सृष्टिपालक एवं विस्तृत धरती हमारे लिए कल्याणकारक हों। विशाल द्यावापृथिवी, पर्वत शृङ्खलाएँ एवं देवताओं के विधिपूर्वक आवाहन हमारे लिए कल्याणकारक हों।

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु
शं नो मित्रावरुणावश्विना शं।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु
शं न इषिरो अभिवातु वातः॥१३॥

ज्योतिपुञ्ज अग्नि, मित्रावरुण एवं अश्विनीकुमार हमारे लिए कल्याणकारक हों। सत्कर्म करने वाले महापुरुषों के सभी अच्छे कर्म हमारा कल्याण करें। शीतल हवाएँ चारों ओर चलें तथा हमारा कल्याण करें।

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ
शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु
शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥१४॥

सर्वप्रथम सत्तावान् पदार्थ बनने के लिए आहूत या उत्पन्न द्यावापृथिवी हमारे लिए कल्याणकारक हों। दृष्टिगत होने वाला अन्तरिक्ष कल्याणकारक बने। उज्ज्वल चमकती हुई वनस्पतियाँ हमारे लिए कल्याणकारिका हों। आकाश से निर्गत होने वाली अच्छाइयाँ विजय कराने वाली बने तथा कल्याण करें।

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु
शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः
शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु॥१५॥

वसुओं के सहित इन्द्र, आदित्यों के सहित प्रशंसित वरुण एवं सभी [1]रुद्रगणों के साथ रुद्र हमारा कल्याण करें। रचनाकार त्वष्टा अग्नियों के सहित हमारा कल्याण करें एवं प्रस्तुत स्तुतियाँ सुनें।

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः।
शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु।
शं नः प्रस्वः शंवस्तु वेदिः॥१६॥

सोम हमारे लिए कल्याणकारक बनें। व्यापनशील तत्त्व, पर्वत एवं यज्ञ हमारे लिए कल्याणकारक बनें। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, कम्प आदि स्वरों का उच्चारण करने में लगने वाला समय एवं वेदी हमारे और आपके लिए कल्याणकारक हों।

---

१. कालिका पुराण अध्याय २९ में रुद्र के सभी गणों की संख्या एक करोड़ से ३६ करोड़ तक बताई गई है–

अपरे रुद्रनामानो जटाचन्द्रार्धमण्डिताः।
देवेन्द्रस्य नियोगेन वर्तन्ते त्रिदिवे सदा।
तेषां सङ्ख्या चैक कोटिस्ते सर्वे बलवत्तराः।
कुर्वन्ति हि सदा सेवां हरस्य सततं गणाः॥
विस्मयन्ति च पापिष्ठान् धर्मिष्ठान् पालयन्ति च।
अनुगृह्णन्ति सततं धृतपाशुपतव्रतान्।
विघ्नांश्च सततं हन्ति योगिनां प्रयतात्मनाम्।
षट्त्रिंशत्कोटयश्च रुद्रस्य सकला गणाः।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु।
शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु
शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥१७॥

विशाल वक्षःस्थल वाले सूर्य उदित हों, हमारे समक्ष दिखाई देने वाली चारों दिशाएँ, पर्वत अचल हों, नदियाँ तथा जल सभी हमारे लिए कल्याणकारी बनें।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः
शं नो भवन्तु मरुतस्वर्काः।
शं नो विष्णुः शं पूषा नो अस्तु
शं नो भवित्रं शंवस्तु वायुः॥१८॥

उत्तम संकल्पों के साथ असीम अदिति, मरुद्गण, विष्णु, पूषा, भावीवृत्तियाँ एवं वायु हमारे एवं आपके लिए कल्याणकारक हों।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः
शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः
शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः॥१९॥

प्रकाशमान रक्षक सविता प्रभा भरित उषाएँ, पर्जन्य एवं संसार के रक्षक शंभु हमारे लिए कल्याणकारक हों।

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु
शं रस्वती सहधीभिरस्तु
शमभिषावः शमु रातिषावः॥२०॥

सभी देवतत्त्वों का समूह, सम्पूर्ण बुद्धियों के सहित सरसवाणी हमारा कल्याण करे। कल्याण के वातावरण में हम सोम का अभिषव करें, तथा दान करें।

शं नो॑ दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः।
शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु।
शं नो अर्वंतः शमु सन्तु गावः॥२१॥

प्रकाशलोक वासी, धरती पर रहने वाले, जल में रहने वाले तत्त्व हमारे लिए कल्याणकारक हों। सत्य के रक्षकगण, अग्रगामी तत्त्व एवं गाएँ अथवा इन्द्रियाँ हमारे लिए कल्याणकारी बने।

शं नः ऋभवः सुकृतंस्तु हस्ताः
शं नो भवंतु पीतरो हवेषु।
शं नो॑ अज एकंपाद्देवो अंस्तु
शं नोऽहिर्बुध्न्यं१शं संमुद्रः॥२२॥

अपने हाथों से केवल सत्कर्म करने वाले ऋभुगण[1] आवाहित पितृगण हमारे लिए कल्याणकारक हों। एक अंश वाले अजन्मा ब्रह्मा, अहिर्बुध्न्य एवं महासागर हमारे लिए कल्याणकारक हों।

---

१. वेदों के अतिरिक्त पौराणिक विवरण में देवगण जिसको अपना आराध्य मानते हैं वे प्राथमिक देव तत्त्व ऋभु कहे जाते हैं—ऋभवो नाम तत्रान्ये देवानामपि देवताः। तेषां लोकाः परतरे यान् यजन्तीह देवताः॥ प्रसिद्धि है कि चाक्षुषमन्वन्तर में इनका आविर्भाव हुआ था।

शं नो अपांनपात्येरुरस्तु
शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः।
आदित्या रुद्रा वसवो जुषंत्वेदम्
ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः॥२३॥

एकत, द्वित एवं त्रित नामक जल के नाती गण, देवों के गोपालक पृश्नि हमारे लिए कल्याणकारक हों। आदित्यगण, रुद्रगण वसुगण नए-नए सम्पादित किए जाने वाले इस सूक्त को आनन्द से ग्रहण करते रहें।

शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो
गोजाता उत ये यज्ञियासः।
ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां
मनोर्यजंत्रा अमृता ऋतन्याः॥
ते नो रासंतमुरुगायमद्य
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥२४॥

प्रकाशलोक एवं पृथिवीलोक में रहने वाली गायों की सन्ततियाँ तथा याजक लोग, इसी प्रकार जो याजक अर्चनीय देवताओं का यजन करते हैं, मानसयाग करने वाले अमरगण, शाश्वत नियमों पर दृढ़ रहने वाले सभी मनुष्य, इस स्तुति को उच्चस्वर में बोलने वाले, बार-बार गान करने वाले इस स्तोता को सुनें। वे सभी देवगण कल्याणमय संकल्पों के द्वारा सदा हमारी रक्षा करें।

षष्ठ सूक्त

[१]स्वस्ति नो मिमीतानां स्वस्त्यात्रेयः ऋषिः विश्वेदेवाः देवता तिस्रो जगत्यस्त्रिष्टुभो वा अन्त्यौ द्वौ अनुष्टुभौ॥

ॐ स्वस्ति नों मिमीतामश्विना भगः
स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः
स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना॥१॥

अश्विनीकुमार हमें ऐश्वर्य प्रदान करें। देवी अदिति कल्याण करें। ऋत के अनुयायी, शत्रुहन्ता पूषा हमें बल प्रदान करें। स्फुट चेतनायुक्त द्यावा-पृथिवी हमारा कल्याण करें।

स्वस्तये वायुमुपं ब्रुवामहि[२]
सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये
स्वस्तय आदित्यासो भवंतु नः॥२॥

अपने कल्याण के लिए हम वायु की स्तुति करते हैं। संसार के पालक सोम की स्तुति करते हैं। सभी देवगण सहित बृहस्पति की स्तुति करते हैं। आदित्य गण सदा हमारे लिए कल्याणकारक रहें।

---

१. ऋ.शा.पा. ५। ५१। ११-१५ प्रस्तुत संग्रह में १-५। मन्त्रसंख्या ६, ७ शांखायनपाठ हैं।

२. 'ब्रवामहै' ऋ.शा.पा.।

विश्वें देवा नों अद्या स्वस्तयें
वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तयें।
देवा अंवंत्वृभवंः स्वस्तये
स्वस्ति नों रुद्रः पात्वंहंसः॥३॥

आज सभी देवमण्डल हमारा कल्याण करें, सर्वव्यापक वैश्वानर अग्नि हमारा कल्याण करें, ऋभुगण हमारी रक्षा करें, दुःख विदारक रुद्र दुर्विचारात्मक पापों से हमारी रक्षा करें।

स्वस्ति मिंत्रावरुणा स्वस्ति पंथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इंद्रश्चाग्निश्चं स्वस्ति नों अदिते कृधि॥४॥

मित्रावरुण, धर्मोचित मार्ग स्वरूपिणी धनवती देवी, इन्द्र, अग्नि एवं अदिति हमारा मङ्गल करें।

स्वस्ति पंथामनुं चरेम सूर्याचंद्रमसांविव।
पुनर्ददताघ्नंता जानता सं गंमेमहि॥५॥

इन सभी की कृपा से हम सूर्य एवं चन्द्रमा के समान कल्याणकारक मार्ग पर चलें। बार-बार इच्छित वस्तु देने वाले, कभी हानि न करने वाले, भली प्रकार जानने वाले परिजनों के साथ संगठित रहें।

स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिंष्टनेमिम्
महदद्भुतं वायसं देवतांनाम्।
असुरघ्नमिन्द्रंसखं समत्सुं
बृहद्यशो नावंमिवारुहेम॥६॥

शुभ के आगार तार्क्ष्य अरिष्टनेमि, विशाल आकार वाले देवों के पक्षी, असुरों के विनाशक, संग्रामों में इन्द्र के मित्र, महान् यशस्वी, सङ्कटों से पार कर देने वाली नाव के समान सुपर्ण के शरण में हम समर्पित होते हैं।

अंहोमुचमाङ्गिरसं गयं च
स्वस्त्यात्रेयं मनसा च तार्क्ष्यम्।
प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये
स्वस्ति संबाधेष्वभयं नो अस्तु॥७॥

मैं मन से शुभरूप पाप से मुक्त करने वाले अग्नि एवं संगय, आत्रेय, तार्क्ष्य एवं जीवन देने वाले के शरण में जाता हूँ। सभी आपत्तियों में हमारा शुभ हो। हमें भय से मुक्ति मिले।

सप्तम सूक्त[1]

मधुच्छन्दः विश्वामित्रः पवमान सोमः गायत्री॥

ॐ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः॥१॥
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्।
द्रुणा सधस्थमासदत्॥२॥

इन्द्र के पान के लिए अभिषव किए जाने पर आनन्ददायी एवं स्वादिष्ट रस की धारा के रूप में क्षरित, दुर्वृत्तियों के विनाशक एवं अमरता प्रदान करने वाले हे सोम! हमें पवित्र करें। सम्पूर्ण मनुष्यों द्वारा स्वर्ण द्वारा अभिषुत होकर द्रोणकलश के माध्यम से

१. ऋ.शा.पा. ९।१।

अर्थात् उस कलश में स्थित होकर अभिषव के स्थान पर प्रतिष्ठित होते हैं।

वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहंतमः।
पर्षि राधो मघोनाम्॥३॥

हे सोम! आप अतिशय धन प्रदाता बनें। सर्वश्रेष्ठ दाता बनें। आवरक तत्त्वों के श्रेष्ठतम विनाशक बनें। धनपतियों के समान हमें भी ऐश्वर्य प्रदान करें।

अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमंधसा।
अभि वाजमुत श्रवः॥४॥

हे सोम! आप महान् देवताओं के यज्ञ में अन्न सामग्री के साथ आएँ। चारों ओर सामर्थ्य एवं सम्पन्नता भर दें।

त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे।
इन्दो त्वे न आशसः॥५॥

हे इन्दु! हम आपके प्रति आकर्षित होते हैं। प्रतिदिन आप के आस-पास विचरण करना हमारा मुख्य कार्य है। हमारी ये स्तुतियाँ आप के लिए हैं।

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता।
वारेण शश्वता तना॥६॥

हे सोम! सूर्य की पुत्री श्रद्धा आपके निर्गलित होते रस को चिरस्थाई बल के द्वारा पवित्र करती है।

तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णंति योषणो दश।
स्वसारः पार्ये दिवि॥७॥

मनुष्यों द्वारा सम्पादित होने वाले यज्ञ-काल में सोमरस निकालने वाले दिन उस रस को स्त्रीरूपिणी बहनों के समान दोनों हाथों की दसों अंगुलियाँ सर्वप्रथम ग्रहण कर लेती हैं।

तमीं हिंवंत्यग्रुवो धमंति बाकुरं दृतिं।
त्रिधातु वारणं मधु॥८॥

इस सोम को ये अंगुलियाँ ही अभिषव स्थान तक ले जाती हैं। यह मधुर सोमरस तीन धातुओं के बर्तनों (द्रोणकलश, आधवनीय और पूतभृत्) में रहने पर कवच के समान रक्षक बनता है।

अभीऽमममघ्न्या उत श्रीणंति धेनवः शिशुं।
सोममिंद्राय पातवे॥९॥

इस शिशु सोम को अहिंसनीय गाएँ इन्द्र के पान के लिए अपने दूध से धोकर शुद्ध करती हैं, सुसंस्कृत करती हैं।

अस्येदिंद्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते।
शूरो मघा च मंहते॥१०॥

वीर इन्द्र सोमरस को पीकर आनन्दित अवस्था में सब प्रकार के बाधक तत्त्वों का विनाश करते हैं तथा कर्मनिष्ठ मनुष्यों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं।

अष्टम सूक्त[१]

मधुच्छंदा अग्निर्गायत्री॥

ॐ अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म्।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम्॥१॥

यज्ञ के आदि में प्रतिष्ठित, दिव्य ऋत्विज, दिव्य होता एवं सभी प्रकार के रत्नों के सर्वश्रेष्ठ धारक अग्नि का मैं पूजन करता हूँ।

अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त।
स दे॒वाँ एह व॑क्षति॥२॥

यह अग्नि प्राचीन एवं नवीन सभी ऋषियों द्वारा पूज्य हैं। वे सभी देवों को हमारे लिए यहाँ बुलाएँ।

अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त्पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे।
य॒शसं॑ वी॒रव॑त्तमं॥३॥

अग्नि के ही कारण हम धन प्राप्त करते हैं प्रतिदिन पोषण प्राप्त करते हैं कभी क्षीण नहीं होते।

अग्ने॒ यं य॒ज्ञम॑ध्व॒रं वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि॑।
स इद्दे॒वेषु॑ गच्छति॥४॥

हे अग्नि! आप जिस हिंसा विहीन यज्ञ को सब प्रकार से व्याप्त करते हैं। वही यज्ञ देवताओं तक जाता है।

---

१. ऋ.शा.पा. १।१। यहाँ से मुख्य रुद्रजप आरम्भ होता है।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरा गमत्॥५॥

होमनिष्पादक, असाधारण प्रज्ञावान्, सत्य कर्म करने वाले, आश्चर्यजनक कीर्तिमान् अग्निदेव अन्य सभी देवों के साथ यहाँ पधारें।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥६॥

हे अग्नि! आप ही याजक भक्त को तुरन्त मङ्गल प्रदान करते हैं। आप अङ्गिरा हैं। यह तथ्य केवल आपके लिए सत्य है।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥७॥

हे अग्नि हम प्रतिदिन सायं एवं प्रातः आपके निकट आते हैं। हमारा सब प्रकार से भरण-पोषण करने वाले आपको प्रणाम।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविं।
वर्धमानं स्वे दमे॥८॥

निर्बाध यज्ञों को प्रकाशित करने वाले अमरत्व के पालक, अत्यन्त दीप्त, अपने निवासस्थान में बढ़ते रहने वाले, हे अग्नि! आपको प्रणाम।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥९॥

हे अग्नि! जिस प्रकार पिता पुत्र के लिए सुख प्रदाता होता है उसी प्रकार आप हमारे लिए बनें। हमारे कल्याण के लिए हमारा उपयोग करें।

नवम सूक्त[1]

ये ने दमिति शिवसङ्कल्पः ऋषिः शिवो देवता त्रिष्टुप् छन्दः। द्वादशी ज्योतिष्मती।

ॐ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वं।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता।
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥१॥

जिस मृत्यु रहित मन के माध्यम से मैंने भूत, वर्तमान एवं भविष्य सब का ज्ञान किया है। जिसके माध्यम से सप्त-हौत्र यज्ञ का सम्पादन किया जाता है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वंति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२॥[2]

जिसके माध्यम से भ्रान्तिविहीन मनीषीगण यज्ञ में कर्म करते हैं। धीरपुरुष राजनीतिक सभाओं में सफल होते हैं। जो अपूर्व नामक धर्म रूपी पुण्य को धारण करता है। सभी प्राणियों के भीतर

---

१. इस सूक्त के यजुर्वेद वाजसनेयी शाखा से सूक्त ३४ मन्त्र १ से ६ मात्र उपलब्ध हैं। किन्तु क्रम में पर्याप्त विपर्यय है। वस्तुतः यह पूरा सूक्त शांखायन शाखा की पाठ परम्परा का है।

२. हस्तलेख में द्वितीय मन्त्र से चतुर्थ पाद में 'तन्मे मनः०' मात्र लिखित है। पाठ की सुविधा के लिए पूरा पाद दिया गया है।

निविष्ट है। वह मेरा मन शुभ सङ्कल्प वाला बने।

येन कर्माणि प्रतिरन्ति धीरा
यतो वाचा मनसा तानि हंति।
यस्यान्वितमनुसंचरन्ति प्राणिनस्
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥३॥

जिसके माध्यम से बुद्धिमान् पुरुष कर्मों को विपरीत रूप भी दे देते हैं। जिसके द्वारा वाणी एवं मन से उन कर्मों के अनुचित रूप को नष्ट कर डालते हैं। जिससे युक्त होकर ही प्राणी उसका अनुगमन करता रहता है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

यस्मिन्नृचः सामयजूंषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनानाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥४॥

जिस मन में ऋक्, यजुः एवं साम वेदों के सभी मन्त्र, रथ की नाभि में लगी तीलियों के समान प्रतिष्ठित हैं। जिस मन में चेतना का अधिकरण प्रतिष्ठित है। जो मनुष्यों का सब कुछ अपने आप में समाहित कर लेता है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥५॥

जो प्रगतिशील ज्ञान है, चेतन है तथा धारणात्मिका बुद्धि है। जो सभी लोगों को प्रकाश देने वाली अमर अन्तर्ज्योति है। जिसके अभाव में किसी भी प्रकार का कर्म नहीं किया जाता। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥६॥

कुशल सारथी द्वारा जिस प्रकार तीव्र वेगशाली घोड़े उचित नियमन के द्वारा संचालित किए जाते हैं। उसी प्रकार जो मन हृत्-कमल में विराजमान कभी पुराना न होने वाला तथा अत्यन्त फुर्तीला है, ऐसे मन के द्वारा सभी मनुष्य संचालित किए जाते हैं। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥७॥

जागरित अवस्था में रहने वाले मनुष्यों में जो मन दूरगामी स्वरूप वाला होता है। उसी प्रकार सोए हुए मनुष्य का भी जो ज्योतिष्मान् मन दूर तक संचरण करता रहता है वह दूरगामी तथा सभी प्रकाशमान् इन्द्रियों की मूल ज्योतिरूप मेरा मन शुभ संकल्पों वाला बने।

यनेदं सर्वं जगतो बभूव
तदेवापि महतो जातवेदाः।
तदेवाग्नि तमसो ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥८॥

जिसके कारण सारा जगत् उत्पन्न हुआ वही अपने जन्म से महान् ज्ञानी है। वही अग्नि एवं अन्धकार दोनों की ज्योति है, दोनों का ज्ञान करता है। ऐसा मेरा मन शुभ संकल्पों वाला बने।

येन द्यौरुग्रापृथिवी चान्तरिक्षं
तत्पर्वताः प्रदिशो दिशश्च।
येनेदं जगद्व्याप्तं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥९॥

जिसके माध्यम से प्रकाशलोक, घोर रूपिणी पृथिवी, अन्तरिक्ष, पर्वत एवं सामने दिखाई देने वाली दिशाएँ सत्तावान् हैं। जिसके द्वारा सम्पूर्ण सन्ततियों से संवलित जगत् व्याप्त है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

ये पञ्च पञ्चा दशतं शतं च
सहस्रं च नियुतं न्यर्बुदं च।
ते यज्ञचित्तेष्टकांतं शरीरम्
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥१०॥

जो देवतत्त्व पाँच, पाँच, दश, सौ, हजार, दसहजार तथा करोड़ की संख्याओं में हैं। वे सभी जिस मन के कारण यज्ञ वेदी के ईटों का रूप धारण करते हैं। मेरा वह मन शुभ संकल्प वाला बने।

ये मनो हृदयं ये च देवा
दिव्या आपो यः सूर्यरश्मिः।
ये श्रोत्रं चक्षुषिं संचरन्तम्।
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥११॥

जो देवतत्त्व मन, हृदय एवं दिव्य जल हैं, जो सूर्य की किरणें हैं, सुनने की शक्ति हैं, आँखों के प्रकाश में संचरण करते हैं। वे सभी जिस मन के कारण सत्तावान् हैं। मेरा वह मन शुभ संकल्प वाला बने।

यद् वैं षष्ठिं त्रिंशतं शरीरं
यज्ञस्य गुह्यं न च नावमाद्यं।
येषां पंच त्रिशतं यत्परं च
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥१२॥

जिन तत्त्वों का आदि एवं अन्त नहीं है। अपितु जो तत्त्व यज्ञ के रहस्य रूप में उपस्थित समुदाय के रूप में तीन सौ साठ शरीर वाले हैं। जिनका तीन सौ पाँच रूप हैं। जो उन रूपों से भी परे हैं। वे सब जिस मन के कारण सत्तावान् हैं। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

वेदाहमेतं पुरुषं महांतं-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥१३॥

मैं इस महान् व्यापक आदित्य के समान भास्वर वर्णवाले अन्धकार के पार रहने वाले शरीरस्थ मन को जानता हूँ। जिसकी

मूल उत्पत्ति का अनुसंधान धीर पुरुष करते रहते हैं। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

अचिंत्यं चाप्रमेयं च
व्यक्ताव्यंक्तपरश्चं यत्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञानं
तन्मे मनंः शिवसंकल्पमंस्तु॥१४॥

जो कल्पना से परे है। किसी प्रमाण से नहीं जाना जा सकता है। व्यक्त जगत्, अव्यक्त प्रधान प्रकृति तथा उससे भी परे है। सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर ज्ञान स्वरूप है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

अस्तिं विनाशयित्वा सर्वमिदं
नास्तिं पुनस्तथैव धृष्टं ध्रुवम्।
अस्ति नांस्ति हि तंतं मध्यंमं पदं
तन्मे मनंः शिवसंकल्पमंस्तु॥१५॥

जो मन सभी अस्तित्ववान् वस्तुओं का विनाश करता है। जो अस्तित्व में नहीं है उसे उसी रूप में पुनः निर्मित करता है। जिसके कारण इस प्रपञ्च का 'है', 'नहीं है', 'दोनों के बीच है' ऐसा विचित्र स्वरूप निर्मित होता है। मेरा वह मन शुभ संकल्प वाला बने।

अस्ति नांस्ति विपंरीतप्रंवाहो
अस्ति नांस्ति सर्वं वा इदं गुह्यं।
अस्ति नांस्ति परात्परों यत्परं च।
तन्मे मनंः शिवसंकल्पमंस्तु॥१६॥

'है और नहीं है' ऐसी परस्पर विरुद्ध ज्ञानधारा तथा 'है कि नहीं है' यह रहस्य बना हुआ है। जो 'है भी', 'नहीं भी है', 'उससे परे भी है', 'उसके भी परे है' इन सभी विकल्पों से परे है। सूक्ष्मतम है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

परांत्परतंरं यस्य
तत्परांच्चैव यत्परं।
तत्परांत्परतंरं ज्ञेयं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥१७॥

जिस सूक्ष्मतत्त्व के सापेक्ष कोई 'सूक्ष्मतर' है उस 'सूक्ष्मतर' से 'सूक्ष्मतर' उससे 'सूक्ष्मतर' उससे भी जो 'सूक्ष्मतर' है वह तत्त्व वस्तुतः जानने योग्य है। वही मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

परांत्परतंरो ब्रह्म
तत्परांत्परतंरो हरिः।
तत्परांत्परतंरो ह्येषः
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥१८॥

जगत् से परे जो है उससे सूक्ष्मतर ब्रह्म हैं। उस परब्रह्म से परे श्रीहरि हैं उस परात्परतर श्रीहरि से भी परे यह शिवतत्त्व है। यह जानने वाला वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

गोभिर्जुष्टो धनेन ह्यायुषा च बलेन च।
प्रजया पशुभिः पुष्कराद्यम्
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥१९॥

इन्द्रियों, सम्पदाओं, आयु, बल, सन्ततियों एवं पशुओं के उपभोग के आनन्द के माध्यम से जिसका शुद्ध चिदात्मक रूप

मलिन किया गया है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

प्रयतः प्रणवो नित्यं
परमं पुरुषोत्तमं।
ॐ कारं परमात्मानं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२०॥

अविनाशी परम चेतना, ॐ रूपी परमात्मा का ध्यान करने वाले के लिए प्रणव है। यह रहस्य जाने वाला मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

यो वै वेदादिषु गायत्री
सर्वव्यापिमहेश्वरात्।
यद्विरुक्तं तथा द्वेश्यं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२१॥

जो वेद उपनिषद् आदि में गायत्री के रूप में सर्वव्यापी महेश्वर से उद्भूत है। जो विशेष रूप से उच्चरित होती है तथा जो आत्मसात् करने योग्य है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

यो वै वेद महादेवं
परमं पुरुषोत्तमं।
यः सर्वं यस्यचित् सर्वं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२२॥

जो मन परम पुरुषोत्तम महादेव को जान चुका है। जो सब कुछ है तथा जिसका सब कुछ है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

योऽसौ सर्वेषु वेदेषु
पठ्यते यज्ञ ईश्वरः।
अकायो निर्गुणोध्यात्मस्
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२३॥

जो शिव ज्ञानी याजकों द्वारा सभी वेदों में ईश्वर, शरीरविहीन, निर्गुण आत्मारूप में बताया जाता है। उस परमतत्त्व का मनन करने वाला मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

कैलासशिखरे रम्ये
शंकरस्य शुभे गृहे।
देवतास्तत्र मोदन्ते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२४॥

कैलास के रमणीय शिखर पर भगवान् शंकर के शुभ निवास स्थान पर जहाँ देवगण प्रसन्नता एवं आनन्द प्राप्त करते हैं। इस रूप का दर्शन करने वाला मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

कैलासशिखराभासं
हिमवद्गिरिसंस्थितं।
नीलकण्ठं त्रिनेत्रं च
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२५॥

जो मेरा मन कैलास के शिखर का प्रकाश है हिमालय पर प्रतिष्ठित रहता है नीलकण्ठ एवं त्रिनेत्र शिव स्वरूप है वह शुभ संकल्प वाला बने।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं
त्रैलोक्यं सचराचरं।
उत्पादितं जगद्व्याप्तं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२६॥

जिसने ब्रह्म से भूमिपर्यन्त तीनों लोकों को नित्य परिवर्तनशील रूप सहित उत्पादित किया। जो सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

य इमं शिवसंकल्पं
सदा ध्यायन्ति ब्राह्मणाः।
ते परं मोक्षं गमिष्यन्ति
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२७॥

जो ब्राह्मण इस शिवसङ्कल्पसूक्त का सदा ध्यान करते हैं। वे परममोक्ष को प्राप्त करेंगें। ऐसी भावना से मेरा मन शुभसंकल्प वाला बने।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे
सुगन्धिंपुष्टिवर्धनं।
उर्वारुकमिवबन्धनान्
मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।[१]
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२८॥

मैं उस त्र्यम्बक शिव का पूजन कर रहा हूँ जो सुगन्ध की गति से समृद्धि की वृद्धि करते हैं। वे प्रभु उसी प्रकार हमें अमरता

१. ऋ.शा.पा. ७/५९/१२ पर भी पठित है।

रूपी अपने शरण से कभी मुक्त न करें केवल मृत्यु चक्र से मुक्त करें जिस प्रकार ककड़ी पकने पर अपनी लता से स्वभावतः अलग हो जाती है किन्तु लता से प्राप्त अपने गुणों को तथा वृन्त को नहीं छोड़ती। ऐसे अमरत्व का प्रभाव प्रदान करने वाला मेरा मन शुभ संकल्प वाला बने।

दशम सूक्त[1]

ॐ सहस्रशीर्षेति नारायणः ऋषिः पुरुषो देवता अनुष्टुप्छन्दः। अन्त्यानुष्टुप्॥

ॐ सहस्रंशीर्षा पुरुंषः सहस्राक्षः सहस्रंपात्।
स भूमिं विश्वतों वृत्वाऽत्यंतिष्ठद्दशांगुलं॥१॥

अनन्त मस्तकों, आँखों और पैरों वाला पुरुष सब ओर से पूरे ब्रह्माण्ड को व्याप्त करके अवस्थित है। इसे अतिक्रान्त करके भी वह दश अंगुल अधिक प्रतिष्ठित है। इस दृश्य प्रपञ्च के पार भी उसकी सत्ता है।

पुरुंष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्चं भव्यं।
उतामृंतत्वस्येशांनो यदन्नेंनातिरोहंति॥२॥

जो कुछ भी वर्तमान है, बीत चुका है और भविष्य में होने वाला है वह सब पुरुष ही है। जो मनुष्य लोग नश्वर अन्न से

---

१. ऋ.शा.पा. १०/९०।

पोषण पाते हैं उनके अमरत्व का स्वामी है, उनके नश्वर स्वभाव को अपनी कृपा से अमरता प्रदान करता है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥३॥

इस पुरुष की इतनी महिमा है कि वह इस दृश्य ब्रह्माण्ड से भी बृहत् है अधिक विशाल है। यह दिखाई देने वाला सम्पूर्ण जगत् उसका चतुर्थ अंश मात्र है। इसके तीन अंश दिव्यलोक में अविनाशी अविकारी रूप में प्रतिष्ठित हैं।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥४॥

यह तीन चौथाई तत्त्व के साथ पुरुष ऊपर दिव्यलोक में अवस्थित है, उस ब्रह्म के केवल चौथे भाग से यह संसार बनता बिगड़ता रहता है। वह परमात्मा सांसारिक पदार्थों का उपभोग करने वालों और उपभोग न करके भी जीवन यापन करने वालों, दोनों को ही चारों ओर से व्याप्त किये हुए हैं।

तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥५॥

उस आदि पुरुष से ब्रह्माण्ड रूप में विराट् नामक पुरुष उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हो कर वह परम पुरुष से अतिरिक्त रूप में एक विश्व पुरुष प्रतिष्ठित हुआ। उसके जन्म के बाद उसी विश्व पुरुष में धरती, नगर आदि सब कुछ अवस्थित हैं।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसंतो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥६॥

जिस चेतन विश्वरूप पुरुष को आधार बनाकर दिव्य आत्माओं ने सृष्टि का प्रथम आरम्भ रूपी यज्ञ किया था उस यज्ञ का घृत वसन्त ऋतु, इन्धन ग्रीष्म ऋतु एवं हवि शरद ऋतु थी।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजंत साध्या ऋषयश्च ये॥७॥

देवों, आदर्श पूर्वपुरुषों और ऋषियों ने उस सर्वप्रथम उत्पन्न पुरुष की प्रथमसृष्टि यज्ञ का आधार बना कर उसका प्रोक्षण किया और उसी से आगे सृष्टि का संकल्पन किया।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यं।
पशून्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये॥८॥

विश्वरूप परमात्मा के व्यक्त रूप ने काल चक्र की प्रतिनिधि ऋतुओं का जहाँ हवन हो रहा था ऐसे 'सर्वहुत' नामक यज्ञ से दधिमिश्रित घृत अर्थात् संपूर्ण भोग्य सामग्री का सम्पादन किया। तब गगन चारी पक्षियों, जंगल और ग्रामीण पशुओं की सृष्टि की।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥९॥

उसी 'सर्वहुत' नामक यज्ञ से ऋग्वेद, सामवेद उसी से अथर्ववेद और यजुर्वेद भी उत्पन्न हुए।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥१०॥

उसी यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुए, दोनों ओर दाँत वाले जीव उत्पन्न हुए। उसी से क्रमशः गायें और भेड़-बकरियाँ निर्मित हुईं अर्थात् सभी प्रकार के जीवों की स्वतन्त्र रचना हुई।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते।११।

नारायण ऋषि स्वयं पुरुष के स्वरूप की जिज्ञासा करते हैं कि, जिस विश्व-पुरुष का विधान किया गया है। वह कितने अंगों में कल्पित है। उसका मुख, भुजाएँ कोंख या उदर एवं पैर क्या हैं।

अगले मन्त्र में समाधान करते हैं कि–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१२॥

इस पुरुष का मुख ब्राह्मण है, भुजाएँ क्षत्रिय हैं, इसकी बस्ति या उदर वैश्य हैं और शूद्र इसके पैर हैं। ये सभी संघटित रूप में विश्व का आकार ग्रहण करते हैं।

चंद्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥१३॥

उस विश्व पुरुष के मन से चन्द्रमा, आँखों से सूर्य, इन्द्र तथा अग्नि, प्राणों से वायु का जन्म हुआ।

नाभ्यां आसीदुन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पुद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥१४॥

विश्व पुरुष की नाभि से आकाश, सिर से प्रकाशलोक, पैरों से भूमि, कानों से दिशाएँ आविर्भूत हुईं। इसी प्रकार अन्य अनन्त लोकों की रचना सम्पन्न हुई।

सुप्तास्यांसन्परिधयस्त्रिः सुप्त सुमिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबंध्नन् पुरुषं पुशुं॥१५॥

इस महान् यज्ञ की (गायत्री आदि सातों छन्द) सात परिधियाँ थीं, (बारहमहीने, पाँचऋतुएँ, तीनलोक एवं आदित्य) इक्कीस समिधाएँ थीं। इस प्रकार देवों ने प्रथमयज्ञ का संपादन करके विश्व-पुरुष को विश्व-पाश में बाँध लिया। काल-चक्र की सम्पूर्ण नियम मर्यादाएँ जब विश्व-पुरुष को समर्पित कर दी गईं तब वह महान् विश्व-पुरुष पराभक्ति में बँध गया।

युज्ञेन युज्ञमयजंत देवास्तानि
धर्माणि प्रथमान्यांसन्।
ते ह नाकं महिमानः सचंत
यत्र पूर्वे साध्याः संति देवाः॥१६॥

देवों ने सृष्टिकर्ता के प्राणरूप मूल में सत्यसंकल्प के द्वारा विश्वपुरुष के लिए सर्वहुतयाग किया। उसमें सब कुछ समर्पित कर

दिया। यज्ञ का विधान जिस रूप में हुआ वे ही सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले शाश्वतधर्म बने। इसी यज्ञ के कारण देवगण उनके पूर्व के विश्वपुरुष के उपासकों के साथ स्वर्ग में प्रतिष्ठित हुए।

एकादश सूक्त[1]

अहं रुद्रेभिर्वागृषिका आत्मादेवता त्रिष्टुप् छन्दः। द्वितीया जगती।

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरा-
म्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्य-
हमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥१॥

मैं परावाणी सभी एकादशरुद्रों, अष्टवस्तुओं, आदित्य एवं विश्वेदेवों के साथ सञ्चरण करती हूँ। मैं ही मित्रावरुण, इन्द्राग्नी एवं अश्विनी कुमारों के युगलरूपों को धारण करती हूँ। मेरे ही कारण ये युगलरूप में अभिव्यक्त होते हैं।

अहं सोममाहनसं विभर्म्य-
हंत्वष्टारमुत पूषणं भगं।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते
सुप्राव्येऽयजमानाय सुन्वते॥२॥

मैं ही प्रकाशलोक में विराजमान शत्रुविनाशक सोम को वहन करती हूँ। मैं ही रूपनिर्माता त्वष्टा, पुष्टिदाता पूषा एवं ऐश्वर्यरूप

---

१. ऋ.शा.पा. १०/१२५।

भग को धारण करती हूँ। मैं भली प्रकार से, उत्तम रीति से हवि प्रदान करने वाले तथा सोम का रस निकालने वाले यजमान को धनप्रदान करती हूँ।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयंतीम्॥३॥

मैं ही सम्पूर्ण जगत् की अधीश्वरी हूँ तथा अपने उपासकों को ऐश्वर्य युक्त करती हूँ। मैंने ही परमतत्त्व को सर्वप्रथम जाना है अतः याजकों में उत्तम हूँ। सर्वत्र व्याप्त एवं सभी जीवों को अपने में आविष्ट करने वाली विश्वरूपा मुझे देवताओं ने अनेक स्थानों पर प्रतिष्ठित किया है।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यंति
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमंतवो मां त उप क्षियन्ति
श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥४॥

जो अन्न ग्रहण करते हैं, देखते हैं, श्वास लेते हैं वे सभी मेरे ही कारण ही ऐसा कर पाते हैं। जो इन वचनों को सुनते हैं वे भी मेरी ही प्रेरणा से सुनते हैं। जो मेरे इस अन्तर्यामी स्वरूप को नहीं स्वीकार करते वे नष्ट हो जाते हैं। हे सुनने वाले! केवल श्रद्धा से जाने जा सकने वाले इस ज्ञान का उपदेश मैं तुम्हें कर रही हूँ सुनो।

अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥५॥

मैं ही स्वयं इस ज्ञान का उपदेश कर रही हूँ जिसका देवताओं और मनुष्यों के द्वारा आनन्द पूर्वक सेवन किया जाता रहा है। मैं जिसका परिपालन करना चाहती हूँ उसे सबसे उत्कृष्ट बना देतीं हूँ। उसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा बना देती हूँ। उसे अत्यन्त तीव्र बुद्धि सम्पन्न क्रान्तदर्शी ऋषि बना देती हूँ।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उं।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं
द्यावापृथिवी आ विवेश॥६॥

मैं ही त्रिपुर विजय के समय वेद-द्रोही, हिंसक त्रिपुरासुर को मारने के लिए रुद्र के धनुष की प्रत्यञ्चा खींचती हूँ। मैं समाज की रक्षा के लिए महासंग्राम करती हूँ। मैं पृथिवी और प्रकाशलोक में व्याप्त हूँ।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्
मम योनिरप्स्वं१न्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वो-
तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥७॥

मैं ब्रह्माण्ड के जनक प्रकाशलोक को उसके कारणस्थान में उत्पन्न करती हूँ। मेरी अभिव्यक्ति का स्थान व्यापनशील जल

के अन्तर्वर्ती चैतन्य सागर में है। वहीं से सम्पूर्ण भुवनों में अनुप्रविष्ट होकर मैं अनेक रूपों में प्रतिष्ठित होती हूँ तथा इस प्रकाशलोक को अपने मायात्मक देह से व्याप्त करती हूँ। इस प्रकार मैं कारणरूप में सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करती हूँ।

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव॥८॥

मैं निर्बाध वायु की तरह सम्पूर्ण जगत् की रचना प्रक्रिया के रूप मे प्रवाहित होती रहती हूँ। मैं इस दृश्यमान धरती और आकाश से परे हूँ और अपनी महिमा से उत्पन्न हुई हूँ।

द्वादश सूक्त[1]

नतमंह इति कुल्मलबर्हिषः। अंहोमुग्धा ऋषिः। विश्वेदेवा देवता उपरिष्टाद् बृहती छन्दः। अन्त्या त्रिष्टुप्॥

ॐ न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यं।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः॥१॥

हे देवगण! इस विनाशशील दुष्कर्म के फलस्वरूप पाप उसे नहीं होता जिसे पाप विनाशक अर्यमा, मित्र और वरुण तीनों देव समानरूप से प्रसन्नता पूर्वक उचित मार्ग पर ले जाते हैं।

तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन्।
येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः॥२॥

---

१. ऋ.शा.पा. १०/१२६।

हे वरुण, अर्यमा एवं मित्र! हम उसी कृपा की प्रार्थना करते हैं जिससे आप मनुष्यों को पाप से एवं कुकर्म रूपी शत्रुओं से रक्षा करते हैं।

ते नूनं नोऽयमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा।
नयिष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ नः पर्षण्यति द्विषः॥३॥

हे वरुण! मित्र एवं अर्यमा! आप अवश्यमेव हमारे रक्षक बनें। हमें समुचित विषयों की ओर ले जाइए। हमें प्रत्येक प्रकार के विरोधों के पार ले जाइए।

यूयं विश्वं परि पाथ वरुणो मित्रो अर्यमा।
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽति द्विषः॥४॥

हे वरुण मित्र एवं अर्यमा ! आप सभी सम्पूर्ण विश्व का भली प्रकार से पालन करें। हे सम्यक् विकासशील नीति वाले देवगण! हम अवश्य ही आपके द्वारा प्रदत्त अपने अनुकूल सम्पत्तियों से निर्बाध रूप से सुखी हों।

आदित्यासो अति स्त्रिधो वरुणो मित्रो अर्यमा।
उग्रं मरुद्भी रुद्रं हुवेमेन्द्रमग्निं स्वस्तयेऽति द्विषः॥५॥

हे अदिति के पुत्र वरुण मित्र एवं अर्यमा ! आप हमें हिंसकों से दूर रखें। मरुद्गणों के साथ हम तेजस्वी रुद्र, इन्द्र एवं अग्नि का आवाहन अपने कल्याण के लिए कर रहे हैं। वे हमको विरोधियों से दूर रखें।

नेतार ऊ षु णस्तिरो वरुणो मित्रो अर्यमा।
अति विश्वानि दुरिता राजानश्चर्षणीनामति द्विषः॥६॥

हे वरुण आदि मार्गदर्शकगण! आप हमें सम्पूर्ण प्रकार के दुष्कर्मों से दूर रखें दुष्कर्मों से उत्पन्न पापों से भी दूर रखें। हे मानवमात्र के स्वामी देवगण! आप लोग हमें विरोधों से भी दूर रखें।

शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा।
शर्म यच्छंतु सप्रथं आदित्यासो यदीमहे अति द्विषः॥७॥

हे वरुण-मित्र-अर्यमा! आप सभी हमारे हित के लिए हमें सुख प्रदान करें। हे अदिति के पुत्रगण! जिन सुखों की हम कामना करते हैं उन्हें आप सब प्रकार से पर्याप्त मात्रा में प्रदान करें।

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्
पदि षिताममुंचता यजत्राः।
एवो ष्वस्मन्मुंचता व्यंहः
प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः॥८॥

हे सुप्रसिद्ध वसुगण! हे यज्ञ के योग्य मित्र आदि देवगण! सोम खरीदने के लिए पैरों में बँधी हुई इस गौरवर्ण की गाय को आपने जिस प्रकार मुक्त किया था। उसी प्रकार हमें पापों से मुक्त कर दें। हे अग्नि! आप हमारी आयु को दीर्घ बनाएँ।

त्रयोदश सूक्त[1]

आशुः शिशान इति अप्रतिरथः ऋषिः इन्द्रो देवता। चतुर्थी बार्हस्पत्या। उपान्त्या द्वा दैवत्या त्रिष्टुप्। अन्त्या त्रिष्टुप् मारुती वा।

ॐ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो
घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनां।
संक्रंदनोऽनिमिष एकवीरः
शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः॥१॥

इन्द्र फुर्तीले एवं तीखे आक्रमणकारी हैं। वे भयानक, बलवान्, अत्यन्त धर्षक, शत्रुओं को कम्पित कर डालने वाले, गम्भीर गर्जन करने वाले, अत्यन्त सजग एवं सैकड़ों सेनाओं को एक साथ पराजित करने वाले योद्धा हैं।

संक्रंदनेनानिमिषेण जिष्णुना
युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं
युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा॥२॥

हे मनुष्यों! ललकार की गर्जना करने वाले सदा सावधान, विजय पाने के लिए तत्पर, योद्धा, अविचल धैर्यशाली, हाथों से बाणों की वर्षा करने वाले उस इन्द्र की कृपा से तुम सब युद्ध में विजयी बनो शत्रुओं को अकर्मण्य बना डालो।

---

१. १०/१०३। ऋ.शा.पा.

स ईषुंहस्तैः स निंषुंगिभिंर्वुशी
संस्त्रंष्टा स युध इन्द्रों गणेनं।
संसृष्टजित्सोंमपा बांहुशर्ध्युर्-
ग्रधंन्वा प्रतिंहिताभिरस्तां॥३॥

इन्द्र बाणधारियों एवं खड्गधारियों को अपने वशवर्ती सेना के रूप में रखते हैं। शत्रु गणों के साथ एक रूप हो जाते हैं। अतः समूह में आने वाले शत्रुओं के भी विजेता हैं। इन्द्र सोम पान करने वाले हैं तथा बाहुबली हैं। विकट धनुर्धर एवं अव्यर्थ बाण चलाने वाले हैं।

बृहंस्पते परिं दीया रथेंन
रक्षोहामित्रॉं अपबाधंमानः।
प्रभुंजन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयं-
न्नस्माकंमेध्यविता रथांनाम्॥४॥

हे बृहस्पति! आप रथ पर आएँ। हे राक्षसों के हन्ता! शत्रुओं को पूर्ण रूप से विनष्ट करते हुए, शत्रु सेना को विदीर्ण करते हुए, नष्ट करते हुए, सर्वत्र विजय करते हुए, हमारे रथों के रक्षक बनें।

बलविज्ञायः स्थविंरः प्रवींरः
सहंस्वान्वाजी सहंमान उग्रः।
अभिवींरो अभिसंत्वा सहोजा
जैत्रंमिन्द्र रथमातिंष्ठ गोवित्॥५॥

सब प्राणियों के सामर्थ्य के ज्ञाता एवं सब के बलस्वरूप, श्रेष्ठ प्रगतिशील वीर शत्रुओं को अभिभूत कर लेने वाले, बली, उग्र,

बलवानों को अनुचर बनाने वाले, बल से उत्पन्न इन्द्र, इस विजय कराने वाले रथ पर विराजमान हो गए।

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं-
जयंतमज्म प्रमृणंतमोजसा।
इमं संजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रं
सखायो अनु सं रभध्वम्॥६॥

हे मित्रों ! समूह को विदीर्ण करने वाले, इन्द्रियों का सामर्थ्य भली प्रकार जानने वाले, हाथ में वज्र नामक शस्त्र धारण करने वाले, अपने तेज से विजय करने वाले एवं शत्रुओं को ध्वस्त करने वाले इस इन्द्र को तुम सब वीरोचित कर्म के प्रति उत्साहित करो एक साथ समवेत रूप में युद्ध आरम्भ करो।

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽ-
दयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽ-
स्माकं सेना अवतु प्र युत्सु॥७॥

शत्रु समूहों को अपने पराक्रम से परास्त करने वाले, निर्दयी वीर, अत्यन्त क्रोधी, अविचल, युद्ध में अपराजेय इन्द्र युद्ध के लिए प्रस्थान करने के लिए सन्नद्ध हैं। वे हमारी सेनाओं की रक्षा करें।

इन्द्र आसां नेता बृहस्पति-
र्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभंजतीनाम्
जयंतीनां मरुतो यन्त्वग्रम्॥८॥

इन्द्र एवं बृहस्पति दोनों शत्रुओं का दमन करने वाली देवसेनाओं के नेता रहे हैं। वे दोनों युद्धकाल में हमारे दाहिने प्रतिष्ठित हों। यज्ञ पुरुष एवं सोम सम्मुख स्थित हों। मरुद्गण हमारी सेना के आगे चलें।

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ
आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानाम्
घोषो देवानां जयतामुदस्थात्॥९॥

महान्, मननशील, ब्रह्माण्ड को प्रकम्पित कर देनेवाले, और विजयशील देवों, आदित्यों, मरुतों, वर्षाकारक इन्द्र और राजा वरुण के उत्कट प्रताप के कारण हमारा जयघोष आकाश को व्याप्त कर चुका है।

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्यु-
त्सत्वनां मामकानां मनांसि।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिना-
न्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः॥१०॥

हे इन्द्र! आप शस्त्रास्त्रों को तीखा करें, हमारे पक्ष के वीरों के मनों को उत्तेजित और उत्साहित करें। हे वृत्रहन्ता इन्द्र! घोड़ों को तेज दौड़ने वाला बनाएँ। हमारे विजयी रथों के जयघोष आकाश तक गूँज उठें।

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्व-
स्माकं या इषवस्ता जयन्तु।

अस्माकं वीरा उत्तरे भवंत्व-
स्माँ उ देवा अवता हवेषु॥११॥

जब हमारे ध्वज शत्रु के ध्वजों में दिखनें लगें, तब इन्द्र हमारी रक्षा करें। हमारे बाण विजयी हों। हमारी सेना के शूरवीर शत्रु सेना को धर्षित कर दें। हमारी पुकार पर देवगण हमारी रक्षा करें।

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयंती
गृहाणांगान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकै-
रंधेनामित्रास्तमसा सचंताम्॥१२॥

दूर-दूर तक सागर के समान लहराती हुई ओ हमारी सेना! तू इनकी एकाग्रता नष्ट करती हुई इनके अङ्गों को जकड़ ले, इनके बीच में दूर-दूर तक समा जा, चारों ओर से आगे बढ़ती हुई अपनी वीरता की ज्वाला से शत्रुओं के हृदयों को जला दे, जिससे हमारे दुश्मनों के दिलों में पराजय का अन्धेरा छा जाये।

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु।
उग्रा वः संतु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ॥१३॥

हे पुरुष! तुम आगे बढ़ो, विजय प्राप्त करो। इन्द्र तुम्हारा कल्याण करें। तुम्हारी भुजाएँ प्रचण्ड बलयुक्त हो जाएँ, जिसे कोई भी पराजित न कर सके।

[१]असौ या सेना मरुतः परैषा-
मभ्यैति न ओजसा स्पर्द्धमाना।
तां गूहत तमसापव्रतेन
यथामीषामन्यो अन्यं न जानात्।।१४।।

हे नायक! यह जो प्रकाश की गति से स्पर्धा करते हुए तीव्रतम वेग से शत्रुओं का पीछा करने वाली मरुद्गणों की सेना है उसे मिथ्या प्रतिज्ञा के समान मायात्मक अन्धकार में इस प्रकार छिपा लीजिए कि ये सब आपस में भी इस अद्वितीय पराक्रम सम्पन्न सेना को न जान सकें।

अन्धा अमित्रा भवता शीर्षाणो अह्य इव।
तेषां वो अग्निदग्धानामिह द्रोहं तु वरम्।।१५।।

आपकी यह सोच अत्यन्त उचित है कि इस मारुती सेना के प्रताप से शत्रु सापों के शिर समान अन्धे हो जाते हैं। उस समय उनका द्रोह भाव अग्नि में जले हुए अन्न के समान निष्फल ही होता है।

---

१. यह मन्त्र शाकल शाखा में नहीं पढ़ा गया है। शांखायनशाखा का पाठ है। हस्तलेख में इस मन्त्र में कुछ स्वरांकन नियमानुकूल नहीं प्रतीत हुए। स्वराघात के नियमों के अनुसार यथासंभव स्वरांकन करके उपस्थापित किया गया है।

चतुर्दश सूक्त

[1]विभ्राडेति विभ्राड् ऋषिः। सूर्यो देवता। जगती छन्दः। आस्तार पंक्तिरन्त्या।

ॐ विभ्राड्बृहत्पिंबतु सोम्यं
मध्वायुर्दधंद्यज्ञपंतावविंह्रुतं।
वातंजूतो यो अंभिरक्षति त्मनां
प्रजाः पुंपोष पुरुधा वि रांजति॥१॥

अत्यन्त देदीप्यमान विशाल आकार वाले सूर्य! यजमान को सम्यक् आयु प्रदान करते हुए सोमयुक्त मधु का पान करें। महावायु से प्रेरित जो सूर्य अपने अस्तित्व से सम्पूर्ण प्रजा की पूरी रक्षा करता है, अनेक प्रकार से पालन करता है, वह इस समय विशेष रूप से देदीप्यमान है।

विभ्राड्बृहत्सुभृंतं वाजसातंमं
धर्मंन्दिवो धरुणें सत्यमर्पितं ।
अमित्रहा वृंत्रहा दंस्युहंतमं
ज्योतिंर्जज्ञे असुरहा संपत्नहा॥२॥

परम देदीप्यमान, पूर्णरूप से परिपुष्ट, सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति प्रदाता, बल के सर्वोत्तम दाता, धर्म में प्रतिष्ठित करने योग्य द्युलोक के धारक, सूर्यमण्डल में प्रतिष्ठित अविनाशी सत्यरूप, प्रतिकूल एवं अप्रिय तत्त्व के विनाशक, जल प्रवाह आदि जीवन के लिए उपयोगी तत्त्वों के छिपाने वालों के विनाशक, किसी प्रकार से विनाश करने

---

१. ऋ.शा.पा. १०/१७०।

वाले तत्त्वों के सर्वोत्तम हन्ता, सहज शत्रुओं के हन्ता, ज्योतिः स्वरूप सूर्य उदित हो रहे हैं।

> इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्
> विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्।
> विश्वभ्राड्भ्राजो महि सूर्यो दृश
> उरु पंप्रथे सह ओजो अच्युतम्॥३॥

यह सर्वोत्कृष्ट, नक्षत्रों, ग्रहों का प्रकाशक, विश्वविजेता, ऐश्वर्यों को वश में रखने वाला सूर्य का तेज 'बृहत्' अर्थात् 'बहुत बड़ा' कहा जाता है। सब कुछ प्रकाशित करने वाला तेजस्वी महान् सूर्य अन्धकार को अभिभूत कर देने वाला, शाश्वत ओज हमारी आँखों में प्रदान करता है।

> विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः।
> येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता
> विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता॥४॥[१]

---

१. हस्तलेख में इस सूक्त के अन्त में ये पंक्तियाँ लिखी हुई है– ॐ भूपते भुवपते भुवनपते भूतपते भूतानां भूतानां पते महतो भूतस्य पते मृल नो द्विपदे न चतुष्पदे च पशवे मृल न श्च॥ द्विपदश्चतुष्पदश्च पशूनां योऽस्माम् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो दुरापौरोऽसि सच्छायोधिनामेन तस्य ते धनु हृदयं मन ईषवश्चक्षुर्विसर्गः। तं त्वां तथा वेद नमस्ते अस्तु सोमस्त्वाहु तु मा मां हिंसीः॥ या वरं न्ये पतयो वृकौकं जगताविव महादेवस्य पुत्राभ्यां भवशर्माभ्यां नमः॥ इन पंक्तियों में स्वर चिह्न नहीं हैं। फिर भी ये परम्परा से पढ़ी जाती हैं अतः इन पंक्तियों को खिल के रूप में टिप्पणी में स्थान देकर पाठ परम्परा के इस अंश को सुरक्षित किया जा रहा है।

हे सूर्य! सब कुछ निर्मित करने वाले, सभी दिव्य तत्त्वों की रक्षा करने वाले, सम्पूर्ण संसार जिस प्रकाश से परिपूर्ण हो चुका है। अपने उस प्रकाश के साथ सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हुए द्युलोक में अपना देदीप्यमान स्थान ग्रहण करें।

पञ्चदश सूक्त

कद्रुद्रायमहारुद्रायातेपितश्चेमारुद्रायस्थिरधन्वनेसूक्तानि।[1]

ॐ कद्रुद्रायेति कण्वः ऋषिः। रुद्रो देवता। गायत्री छन्दः। अन्त्यानुष्टुप्।

ॐ कद्रुद्राय प्रचेतसे मीढुष्टमाय तव्यसे।
वोचेम शंतमं हृदे॥१॥

प्रकृष्ट ज्ञानी, धनदाता, बल बढ़ाने वाले रुद्र के लिए हम कब हृदय से शान्तिकारक स्तुति बोलेंगे?

यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे।
यथा तोकाय रुद्रियं॥२॥

देवमाता अदिति! जैसे आप स्वयं हमारे पशुओं, गायों और मनुष्यों पर कृपा करती हैं, उसी प्रकार हमारे बच्चों के लिए रुद्र का अनुग्रह प्रदान करें।

---

१. यहाँ हस्तलेख में यह पंक्ति है इन सूक्तों का इस प्रकार उल्लेख संभवतः ऋग्वेदीय रुद्रजप में इन सूक्तों की प्रधानता का द्योतक है। प्रकृत 'कद्रुद्राय' सूक्त ऋ.शा.पा. १/४३ पर उपलब्ध है। इसके ऋषि कण्व घौर, देवता रुद्र एवं मित्रावरुण तथा सोम, छन्द (१-८) गायत्री एवं नवम मन्त्र में अनुष्टुप् बताया गया है।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति।
यथा विश्वे सजोषसः॥३॥

मित्र और वरुण जिस प्रकार रुद्र की प्रार्थना में प्रवृत्त हमारा भाव जानते हैं, जिस प्रकार स्वयं रुद्र हमारा भाव निरन्तर देख रहे हैं। जिस प्रकार सभी देवता आनन्दित हैं।

गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजं।
तच्छंयोः सुम्नमीमहे॥४॥

उसी प्रकार स्तुतियों के स्वामी, यज्ञों के स्वामी, जल के माध्यम से रोगों के निवारक रुद्र से हम प्रजा विषयक सुख प्राप्त करना चाहते हैं।

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते।
श्रेष्ठो देवानां वसुः॥५॥

जो प्रज्वलित सूर्य के समान तेजस्वी हैं और स्वर्ण की भाँति दमकते हैं वही सर्वव्यापी रुद्र देवों में श्रेष्ठ हैं।

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये।
नृभ्यो नारिभ्यो गवे॥६॥

वही रुद्र हमारे पुरुषों, स्त्रियों और गाय-बैल प्रभृति पशुओं के लिए कल्याकारी हैं-वह इन सबको गतिशील बनाये रखते हैं।

अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणां।
महि श्रवस्तुविनृम्णं॥७॥

हे सोम! आप हमें सैकड़ों मनुष्यों के लिए पर्याप्त, उत्कृष्ट और बलकारक अन्न तथा धनराशि प्रदान करें।

मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरंत।
आ न इन्दो वाजे भज॥८॥

रुद्र की कृपा से बाधा पहुँचाने वाले हमें न सताएँ। हे सोम! आपको शत्रु बाधित न कर सकें। हे इन्द्र! इस यज्ञ का आप सेवन करें।

यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः॥९॥

हे सोम! सत्य और अमृत से परिपूर्ण परमधाम में विद्यमान आपकी परिचर्या करने वाले जो प्रजाजन हैं। हे सर्वोच्च सोम! वह प्रजा आपका अलंकार कर रही है। उस भक्ति को आप समझें।

षोडश सूक्त

[1]इमारुद्रायेति कुत्सः ऋषिः रुद्रो देवता जगती छन्दः अन्त्ये द्वे त्रिष्टुभौ।

ॐ इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने
क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे
विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरं ॥१॥

---

१. ऋ.शा.पा. १/११४।

बलवान्, जटाधारी और वीरों को आश्रय देने वाले रुद्र के लिए हम इन मन्त्रों को समर्पित कर रहे हैं। हमारे इस याजक समूह में सभी लोग हृष्ट-पुष्ट तथा नीरोगी रहें, सभी मनुष्यों और चतुष्पद पशुओं का कल्याण हो।

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि
क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता
तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु॥२॥

वीरों अथवा मरुतों के आश्रय स्वरूप रुद्र! हम आपकी स्तुति करते हैं। आप हमें सुखी रखें, रोगों से मुक्त रखें, आप मनुष्यों के पालनकर्ता हैं। उन्हें शान्ति और रोगनिवारक शक्ति प्रदान करें। आपके उपदेशों से हम लाभान्वित हों।

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया
क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद्विषो अस्माकमा
चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः॥३॥

हे सुखदायक रुद्र! द्योतनशील याग के अनुष्ठान से हम वीरों को आश्रय देने वाली आपकी बुद्धि प्राप्त करें। हमें सुख प्रदान करते हुए आप ऐसा अनुकूल आचरण और व्यवहार करें, जिससे हमारे वीरों की हानि न हो और हम आपको हवि-समर्पण करते रहें।

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं
वंकुं कविमवसे नि ह्वयामहे।
आरे अस्मद् दैव्यं हेडो अस्यतु
सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे॥४॥

तेजस्वी, यज्ञ के अनुष्ठाता, वक्र गति से चलने वाले महाज्ञानी रुद्र का हम यज्ञहेतु आवाहन करते हैं। सभी देवों का क्रोध हमसे दूर रहे। हम रुद्र की सद्बुद्धि का वरण करते हैं।

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं
त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि
शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत्॥५॥

देदीप्यमान दृढ़ अंगों वाले, चमकती हुई जटाएँ धारण करने वाले रुद्र को हम आमन्त्रित करते हैं। वे अपने हाथों में श्रेष्ठ रोगनिवारक औषधियाँ धारण करने वाले कल्याण कारक रुद्र हमें रक्षाकवच एवं गृह प्रदान करें।

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः
स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनं।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं
त्मने तोकाय तनयाय मृड॥६॥

यह स्तुति मरुतों के पिता रुद्र के लिए कहा जा रहा है। यह स्वादिष्ट पदार्थों से भी अधिक प्रीतिकर आनन्दवर्धक प्रार्थना है। हे अमर देव! आप हमें मानवोचित भोजन प्रदान करें तथा मुझे और मेरी सन्ततियों को सुख प्रदान करें।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकम्
मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितं।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं
मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः।।७।।

हे रुद्र! आप वृद्ध और सम्मानित जनों को मत कष्ट दें। हमारे बच्चों को भी कष्ट मत दें। हमारे पक्ष के जो लोग उन्नति कर रहे हैं, उन्हें भी आघात न पहुँचाएँ। हमारे माता-पिता और आत्मीयजनों को भी पीडित न करें।

मा नस्तोके तनये मा न आयौ
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधी-
र्हविष्मंतः सदमित्त्वा हवामहे।।८।।

हे रुद्र! आप हमारे बच्चों, पुरुषों, गायों में दुर्बलता उत्पन्न न करें। क्रोध के कारण हमारे वीरों की हिंसा न करें। हवि-समर्पण करने के लिए हम आपका आवाहन करते हैं।

उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं
रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृडय-
त्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे।।९।।

हे मरुतों के पिता रुद्र ! पशुपालक के विशाल निधि की भाँति हमें उत्तम सुख प्रदान करें। हम आपकी स्तुति करते हैं। क्योंकि आपका ज्ञान हमें सुख देने वाला है। हम इसीलिए आपसे सुरक्षा का वरदान चाहते हैं।

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नम्
क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु।
मृडा च नो अधि च ब्रूहि देवा-
धा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः॥१०॥

वीरों को आश्रय देने वाले हे रुद्र! धरती को विह्वल कर देने वाले और वीरपुरुषों को भी विदारित देने वाले अपने शस्त्र को हम से दूर रखें। हमें आपका सौमनस्य सुलभ हो। हमें सुखी करें। हमें मार्गदर्शक उपदेश प्रदान करें। अपने निग्रह एवं अनुग्रह नामक शक्तियों से हमारा कल्याण करें।

अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः
शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता-
मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥११॥

हम इस रुद्र के लिए स्तुतियों का उच्चारण करते हैं। हम उनसे सुरक्षा की इच्छा से निवेदन कर रहे हैं। इस निवेदन को मरुतों से संवलित रुद्र सुनें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक हमारी इस प्रार्थना का अनुमोदन करें।

सप्तदश सूक्त

[१]आतेपितरिति। गृत्समदः ऋषिः। रुद्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः।

ॐ आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु
मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत
प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः॥१॥

हे मरुतों के पिता रुद्र ! आपसे हमें सुख प्राप्त हो। हमें सूर्य के दर्शन से पृथक् मत करें। शत्रुओं पर हमारे वीर पुत्र विजयी हों। सन्तानों से हमारी वंशवृद्धि होती रहे।

त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः
शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।
व्यस्मद् द्वेषो वितरं व्यंहो
व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः॥२॥

हे रुद्र! तुम्हारे द्वारा प्रदत्त कल्याणकारी औषधियों के द्वारा हम सौ हेमन्त ऋतुओं तक जीवित रहें। आप हमसे द्वेष करने वालों को नष्ट कर दें। पाप को दूर हटा दें। विषूची, जीवाणु संक्रमण आदि के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों को नष्ट कर दें।

---

१. ऋ.शा.पा. २/३३।

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि
तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति
विश्वा अभीती रपसो युयोधि॥३॥

हे रुद्र ! इस उत्पन्न संसार में अपने ऐश्वर्य के कारण आप सर्वश्रेष्ठ हैं। हाथों में वज्र धारण किए हुए हे रुद्र ! बलशाली व्यक्तियों में आप सर्वाधिक बलवान् हैं। कल्याण प्रदान करते हुए हमें पाप के पार कर दें। पाप की ओर ले जाने वाले सभी मार्गों को हमसे दूर रखें।

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा
दुष्टुती वृषभ मा सहूती।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभि
भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि॥४॥

हे रुद्र! हम आपको अनुचित प्रकार से नमस्कार करके कभी क्रोधित न करें। असाधु स्तुतियों द्वारा भी क्रोधित न करें। हे बलशाली रुद्र! अन्य साधारण देवों के साथ आपको आमन्त्रित करके भी हम क्रोधित न करें। आप हमसे जुड़े वीर पुरुषों को जीवनदायिनी औषधियों से सबल कर दें। ऋषियों से सुनता हूँ कि आप चिकित्सकों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

हवीमभिर्हवते यो हविर्भि-
रव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै
बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै॥५॥

जिन रुद्र को हवियों से युक्त स्तुतियों के द्वारा बुलाया जाता है। उनके क्रोध का निवारण मैं अपनी प्रार्थनाओं से करता हूँ। कोमल हृदय वाले, विधिवत् आवाहन के योग्य, पोषणकर्ता तथा सुन्दर ठुड्डी वाले रुद्र हमें कभी कष्ट न दें।

उन्मा॑ ममंद वृ॒षभो म॒रुत्वा॒न्
त्वक्षी॑यसा॒ वय॑सा॒ नाध॑मानं।
घृणी॑व छा॒याम॑र॒पा अ॑शी॒या
विं॑वासेयं रु॒द्रस्य॑ सु॒म्नं ॥६॥

बलवान् और मरुतों से युक्त रुद्र मुझ याचक को तेजोमय अन्न से तृप्त करें। निष्पाप होकर मैं रुद्र की कृपा उसी प्रकार प्राप्त करूँ जैसे सूर्य के ताप से व्यथित व्यक्ति छाया का सेवन करता है। इस सुख को प्राप्त करने के लिए मैं रुद्र की परिचर्या करूँ।

क्व॑१॒स्य तें रुद्र मृ॒ड॒याकु॒र्हस्तो॒
यो अस्ति॑ भेष॒जो जला॑षः।
अ॒प॒भ॒र्ता रप॑सो॒ दैव्य॑स्या॒भी
नु मां॑ वृषभ चक्षमीथाः॥७॥

हे रुद्र ! आपका वह हाथ कहाँ है, जो औषधिरूप है, जलचिकित्सक है, सबके लिए सुखद है? हे बलवान् देव ! मुझमें दैवात् आ गये दुर्व्यसनों को दूर कर मेरे अपराधों को क्षमा कर दें।

प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे
महो महीं सुष्टुतिमीरयामि।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभि-
र्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम॥८॥

सबका भरण-पोषण करने वाले, बलवान् और गौरवर्ण वाले रुद्र के लिए मैं उत्तमोत्तम स्तुति करता हूँ। अत्यन्त तेजोमय इस रुद्र को हे स्तोताओं ! तुम अपने अभिवादनों से प्रसन्न करो। हम रुद्र के इस तेजस्वी नाम की स्तुति करते हैं।

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो
बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरे-
र्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम्॥९॥

दृढ अंगों से युक्त, बहुविध रूपों वाले, उग्र और पोषण कर्ता रुद्र उज्ज्वल अलंकारों से विभूषित हैं। इस भुवन के पोषक सबके नियन्त्रक रुद्र से असुरों का संहारक बल कभी अलग नहीं होता।

अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वा
र्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं
न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति॥१०॥

हे रुद्र ! आप अपनी योग्यता के आधार पर धनुष और बाणों को धारण करते हैं। इसी योग्यता के कारण आप यज्ञानुष्ठान में प्रयुक्त होने वाले अनेक रूपों वाले आभूषणों को धारण करते हैं। अपनी योग्यता से ही इस अति विस्तृत जगत् की रक्षा करते हैं। हे रुद्र! निश्चय ही आप से अधिक ओजस्वी अन्य कोई नहीं है।

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं
मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रं ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यम्
ते अस्मन्नि वपंतु सेनाः॥११॥

हे याजक! प्रख्यात, रथ पर आसीन, नित्य युवा, सिंह के समान भयङ्कर, शत्रुहन्ता और उग्रस्वरूप वाले रुद्रदेव का स्तवन करो। हे प्रशंसित होने वाले रुद्र! आप स्तुतिकर्ता याजक को सुखी करें। आपकी सेनाएँ हमारे शत्रुओं को नष्ट कर दें।

कुमारश्चित्पितरं वंदमानं
प्रतिं नानाम रुद्रोपयन्तं।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे
स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे॥१२॥

जैसे आशीर्वाद देते हुए वन्दनीय पिता को कोई बालक प्रणाम करता है। उसी प्रकार हे रुद्र ! आप जब आप मेरे समीप आते हैं, तब मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप प्रभूत धनदाता हैं और सज्जनों के परिपालक हे रुद्र ! हम आपकी स्तुति करते हैं। इस स्तुति के प्रभाव से आप हमें औषधियाँ प्रदान करें।

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि
या शंतमा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता
शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि॥१३॥

हे मरुद्गण! हे कामनाओं के वर्षक! आपकी जो अत्यन्त निर्मल, सुखप्रद और कल्याणकारक औषधियाँ हैं तथा जिन औषधियों को हमारे पिता मनु ने हमारे लिए चुना था। मैं उन सभी को प्राप्त करना चाहता हूँ। क्योंकि रुद्र का प्रसाद होने के कारण वे औषधियाँ रोगों को शान्त करती हैं और भय को दूर करती हैं।

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः
परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व
मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड॥१४॥

महादेव रुद्र के घातक शस्त्र हमारी रक्षा करें। हमारे प्रति ज्योतिः स्वरूप रुद्र का रौद्रभाव दूर हो जाए। हे सुखद रुद्र ! आप अपने सुदृढ धनुषों को भक्ति की सम्पत्ति से धनी लोगों के लिए शिथिल कर दें तथा हमारी संततियों को सुखी करें।

एवा बभ्रो वृषभ चेकितान
यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि
बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥१५॥

हे गौरवर्ण, बलवान्, सर्वज्ञ देव! आप हमें वह उपाय बताएँ, जिससे न तो आप हम पर कभी क्रुद्ध हों और न हमें पीड़ित करें। हम भी भाइयों और पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर विद्वत्सभा में आपके विषय में विस्तार से बोल सकें।

अष्टादश सूक्त

[१]इमा रुद्राय स्थिरधन्वन् इति वसिष्ठः ऋषिः रुद्रो देवता त्रिष्टुप् छन्दः।

ॐ इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः
क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने।
अषाल्हाय सहमानाय वेधसे
तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः॥१॥

हे याजकों ! इन स्तुतियों को सुदृढ़ पिनाक नामक धनुष धारण करने वाले, बाणों का तीव्र संधान करने वाले, शुभ सम्पत्तियों वाले, जगत् के निर्माता, असहनीय पराक्रम वाले, सहिष्णु स्वभाव वाले, शूल जैसे तीखे शस्त्र धारण करने वाले परमेश्वर रुद्र को समर्पित करो। वे इन प्रार्थनाओं को कृपापूर्वक सुनें।

स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः
साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरा-
नमीवो रुद्र जासु नो भव॥२॥

---

१. ऋ.शा.पा. ७।४६।

वे रुद्र पृथिवी पर जन्म लेने वाले लोगों के गृह के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे ही दिव्य जीवन जीने वालों के लिए साम्राज्य निर्माण के हेतु भी हैं। हे रुद्र! आप हमारी सुरक्षा में लगी सेनाओं की रक्षा करते हुए हमारे आस-पास रहें। हमारे प्रजाजनों को नीरोग करें।

या ते॑ दि॒द्युदव॑सृष्टा दि॒वस्परि॑
क्ष्म॒या चर॑ति॒ परि॒ सा वृ॑णक्तु नः।
स॒हस्रं॑ ते स्वपिवात भेष॒जा,
मा न॑स्तो॒केषु॒ तन॑येषु रीरिषः॥३॥

आपकी जो आकाशीय ऊर्जा आकाश से छूटकर पृथ्वी पर पृथ्वी के साथ रहती है, वह हमें हानि न पहुँचाए। वायु को नियन्त्रित करने वाले हे रुद्र! आपके पास सहस्रों औषधियाँ हैं, उन औषधियों के प्रयोग से ऐसी व्यवस्था करें जिससे हमारे संततियों को हानि न पहुँचा करे।

मा नो॑ वधी रुद्र मा परा॑ दा॒
मा ते॑ भूम॒ प्रसि॑तौ हीडि॒तस्य॑।
आ नो॑ भज ब॒र्हिषि॑ जीवश॒ंसे
यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः॥४॥

हे रुद्र! आप हमें आघात न पहुँचाएँ। हमारा परित्याग भी न करें। आपके क्रोध करने पर हम उससे प्रभावित न हों। प्राणियों के द्वारा प्रशंसित यज्ञ में पधार कर हमारी सेवा ग्रहण करें। आप सदा हमें अपनी कल्याणकारी आशीः के द्वारा सुरक्षित रखें।

एकोनविंश सूक्त

[१]सोमारुद्राधारयेति भारद्वाजः ऋषिः सोमारुद्रौ देवते। आव इत्यात्रेयी त्रैष्टुभी।

ॐ सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं
प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवंतु।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना
शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे॥१॥

हे सोम और रुद्र! आप दोनों प्राणशक्ति से सम्पन्न हैं। यह यज्ञ निःसन्देह आपके पास पहुँचे। घर-घर में आप दो आँखों, दो कानों, दो नासिका छिद्रों और एक मुख के रूप में सात रत्न रखते हैं। आप हमारा कल्याण करते रहें। हमारे प्रियजनों और पालतू पशुओं के लिए भी कल्याणकारक रहें।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूची-
ममीवा या नो गयमाविवेश।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचै-
रस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु॥२॥

हे सोम और रुद्र ! आप विविध प्रकार के अनर्थों को दूर करें। जो रोग कारक तत्त्व हमारे घर में प्रविष्ट हैं उन्हें और निर्ऋति नामक घातक तत्त्व को हमारे घर के लिए निषिद्ध कर दें। हमारा मङ्गल हो और सुखद समाचार मिलते रहें।

---

१. ऋ.शा.पा. ६।७४। १-४ पर इस सूक्त के ४ मन्त्र पठित हैं।

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे
विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तं।
अव स्यतं मुंचतं यन्नो अस्ति
तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत्॥३॥

हे सोम और रुद्र! आप दोनों हमारे शरीरों में चिकित्सा के इन सभी साधनों औषधियों का प्रयोग करें। हमारे शरीर के अंगों में भी जो भी दोष हैं और जो भी त्रुटियाँ हमने किया है, उन सबसे हमें मुक्त करा दें।

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ
सोमारुद्राविह सु मृडतं नः।
प्र नो मुंचतं वरुणस्य पाशाद्
गोपायतं नः सुमनस्यमाना॥४॥

हे तीक्ष्ण आयुधों तथा तीक्ष्ण शस्त्रों वाले सुन्दर स्वरूप वाले सोम एवं रुद्र! यहाँ संसार में हमें भलीभाँति सुखी करें। वरुण के पाश से हमें मुक्त करें। हम दुष्टता को छोड़कर सज्जन बनने में लगे हुए हैं। आप हमारी सुरक्षा करें।

[[१]ॐ जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय
स्तोमं रुद्राय दृशीकं ॥५॥

---

१. ऋ.शा.पा. १।२७।१०। जो मन्त्र उपलब्ध हस्तलेख में नहीं पढ़े गए हैं किन्तु शाङ्खायनरुद्राध्याय में पठित हैं उन्हें कोष्ठक में रखा गया है।

हे जीर्ण हो जाने पर भी उद्दीप्त होने की शक्ति रखने वाले अग्नि! आप रुद्र के लिए समर्पित इस स्तुति को यज्ञ सम्पादन से अधिगत होने वाली सिद्धि के लिए जन-जन में प्रविष्ट कराएँ।

[1]ॐ नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो
नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान्यदि शक्नवाम
मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः॥६॥]

मैं अत्यन्त गुणवान् एवं अल्प गुणवान्, युवा एवं वृद्ध सभी देवतत्त्वों को प्रणाम करता हूँ। सामर्थ्य रहने पर मैं सभी देवताओं का यजन करता हूँ। अतः हे देवगण! सर्वेशशिव की इस स्तुति विस्तार को आप विच्छिन्न न करें।]

[2]ॐ रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो
रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतम्
मरुत्वंतं सख्याय हवामहे॥७॥

प्रकाशस्वभाव ईश्वर प्राणात्मक रुद्रों के माध्यम से गतिमान होता है। प्राणात्मक रुद्रों के साथ ही विचारों के स्तर पर उठने वाली मध्यमा वाणी विस्तृत गति प्राप्त करती है। स्फुटवाणी के रूप में व्यक्त होती है। उन्हीं रुद्रों के साथ वर्तमान होने के कारण स्तुति की ध्वनियाँ प्रख्यात ईश्वर की अर्चना करती हैं। उस प्राणवान् ईश्वर का हम अपने आन्तर सम्बन्ध के लिए आवाहन करते हैं।

---

१. ऋ.शा.पा. १।२७।१३।

२. ऋ.शा.पा. १।१०१।७। हस्तलेख में भी पठित।

[[1]ॐ प्र वः पांतमंधसो धियायते
महे शूराय विष्णवे चार्चत।
या सानूनि पर्वतानामदाभ्या
महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना॥८॥]

हे याजकगण! आपके लिए स्वभावतः पालक महनीय इन्द्र एवं विक्रमशील विष्णु की अर्चना सोम एवं स्तुतियों के द्वारा करो। ये दोनों महान् देव पर्वतों की अनतिक्रमणीय चोटियों पर उसी प्रकार अविचल रूप से विराजमान रहते हैं जिस प्रकार अच्छे पुरुष वेगशाली अश्व पर अविचल सवार रहते हैं।]

[2]ॐ आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं
होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ता-
द्धिरण्य रूपमवसे कृणुध्वं ॥९॥

हे यजमान! यज्ञ के अधिपति सभी देवतत्त्वों के आवाहक, प्रकाशलोक एवं पृथिवीलोक में व्याप्त सत्यतत्त्वों को अनवरत प्रतिष्ठित करने वाले, होता, स्वर्ण के समान प्रभावाले, अग्निरूप मे तीक्ष्ण प्रताप वाले, प्राचीन काल में, सृष्टि की प्राथमिक अवस्था में आपके ही रक्षार्थ प्रकाशलोक एवं पृथिवीलोक में आकस्मिक वज्राघात करने वाले परमात्मा रुद्र के प्रति यज्ञ समर्पित करो।

---

१. ऋ.शा.पा.१।१५५।१।

२. ऋ.शा.पा. ४। ३।१। हस्तलेख में पठित।

[1]ॐ कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने
कद्वाताय प्रतवसे शुभंये।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः
कदग्ने रुद्राय नृघ्ने॥१०॥

हे प्राणात्मक देवों में विकसित दिव्य ऊर्जा अग्नि! आपका तात्त्विक रूप क्या है? असाधारण बलशाली शुभकारक सर्वत्रगतिशील असत्यविहीन प्राणवायु के लिए, धरती के लिए आपका तात्त्विकरूप क्या है? पापियों के संहारक रुद्र के प्रति आपका वास्तविक स्वरूप क्या है? कृपापूर्वक बताएँ।

[[2]ॐ हंसः शुचिषद्वसुरंतरिक्षस-
द्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा
गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं ॥११॥

सर्वत्र गतिशील परमात्मा प्रकाशलोक में आदित्य रूप में, अन्तरिक्ष में वायु रूप में, यज्ञ वेदी पर यज्ञ निष्पादक सर्वदा पूज्य अग्नि रूप में, घरों में पाकसाधन अग्नि इत्यादि रूप में, मनुष्यों में चेतन ऊर्जा के रूप में, सभी श्रेष्ठ स्थानों में एवं अनन्त आकाश में स्थित होकर व्यक्त होते हैं। परमात्मरूप दिव्य ऊर्जा अग्नि जल से विद्युत रूप में, सूर्य की रश्मियों से प्रकाश रूप में, कालनिरपेक्ष नियमों से अबाध्य सिद्धान्त रूप से, सत्य से अनश्वर तत्त्व रूप में,

---

१. ऋ.शा.पा. ४।३।६। हस्तलेख में पठित।

२. ऋ.शा.पा. ४।४०।५।

अपरिवर्तनीय उदयाचल से सूर्य के रूप में आविष्कृत होते हैं। इस प्रकार सर्वव्यापी परमात्मा सभी का आश्रय ब्रह्म तत्त्व है।

[1]ॐ कुथा मुहे रुद्रियाय ब्रवाम्
कद्राये चिकितुषे भगाय।
आप ओषधीरुत नोऽवंतु
द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः॥१२॥

किस विधि से हम रुद्रगणों को प्रसन्न करने वाले वचन कहें। किस प्रकार से ज्ञानस्वरूप भग की स्तुति करें कि धन का लाभ हो। जलतत्त्व, ओषधियाँ प्रकाशलोक, वनप्रदेश, वृक्षों को केश रूप में धारण करने वाले पर्वत सभी हमारे रक्षक हों।

[2]ॐ तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा
यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं
नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य॥१३॥

हे आत्मन् तुम उसी रुद्र की स्तुति करो जो समुचित बाणों को धारण करने वाले तथा शोभन धनुर्धर हैं। जो सम्पूर्ण ओषधियों के स्वामी हैं। तुम उसी परम बलशाली रुद्र का परम आत्मशान्ति के लिए मन्त्रों द्वारा यजन करो जो दुष्कर्मों के विनाशक हैं।

---

१. ऋ.शा.पा. ५।४१।११।

२. ऋ.शा.पा. ५।४२।११।

[1]ॐ भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी
रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ।
बृहंतमृष्वमजरं सुषुम्न-
मृधंग्घुवेम कविनेषितासः॥१४॥

सम्पूर्ण जगत् के पिता रुद्र का इन स्तुतिमन्त्रों से अहर्निश समर्चन करो। हम सभी परम ज्ञानी रुद्र की कृपा से प्रेरित हो कर महान्, दर्शनीय, अविनाशी, नित्यतृप्त रुद्र की प्रसन्नता के लिए यज्ञ करें।

[2]ॐ रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः।
रायः सखायमीमहे॥१५॥

अतिरथी सर्वोत्तम नेता, जटाजूट धारण करने वाले, महनीय ऐश्वर्यों के स्वामी, हमारे आत्मीय, पोषक शिव से हम याचना करते हैं।

[3]ॐ रुद्रस्य ये मीढ्हुषः संति
पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै।
विदे हि माता महो मही षा
सेत्पृश्निः सुभ्वे३गर्भमाधात्॥१६॥]

---

१. ऋ.शा.पा. ६।४९।१०।

२. ऋ.शा.पा. ६।५५।२।

३. ऋ.शा.पा. ६।६६।३।

परमतृप्ति प्रदान करने वाले रुद्र के पुत्रगण जो मरुत् हैं। वे धरती एवं अन्तरिक्ष दोनों का भरण-पोषण करने में समर्थ हैं। इन सर्वज्ञ, महान् रुद्रपुत्रों की माता अत्यन्त गौरवमयी है। वे सभी मनुष्यों के सर्वविध कल्याण के लिए गर्भ धारण करतीं हैं।

[१]ॐ अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो
वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र
इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवंतु देवाः॥१७॥

इन्द्र के नेतृत्व में उनके साथ रहने वाले रुद्र गण, वृत्र-वध-हेतु इस यज्ञ में हमारी सुरक्षा करें। ये रुद्रगण हमारे लिए सुवृष्टि करने वाले मेघों के समान संरक्षक हैं। इन्द्र बलशाली हैं, जो अपने प्रशंसक तथा स्तुतिकर्ता का कार्य करने के लिए उनके पास तुरन्त आ जाते हैं।

[[२]ॐ प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पद-
मेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने
परि व ऊमेभ्यः सिंचता मधु॥१८॥]

---

१. ऋ.शा.पा. ८।६३।१२। हस्तलेख में पठित।

२. ऋ.शा.पा. १०।३२।५।

हे यजमानगण! देवगणों के भक्त, एक मुख्य होता इन्द्र मरुतों के साथ आपके यज्ञ स्थल की ओर प्रस्थान कर चुके हैं। उन अमर देवों को मन्त्रात्मक स्तुति भी ऐश्वर्य शाली बनाती है। अतः आप सभी उन रक्षक देवताओं के लिए मधु का अभिषेक करें।

ॐ त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥१९॥

मैं उस त्र्यम्बक शिव का पूजन कर रहा हूँ जो सुगन्ध की गति से समृद्धि की वृद्धि करते हैं। वे प्रभु उसी प्रकार हमें अमरता रूपी अपने शरण से कभी मुक्त न करें केवल मृत्यु चक्र से मुक्त करें जिस प्रकार ककड़ी परिपक्व होने पर अपनी लता से स्वयं अलग हो जाती है किन्तु लता से प्राप्त अपने गुणों को नहीं छोड़ती।

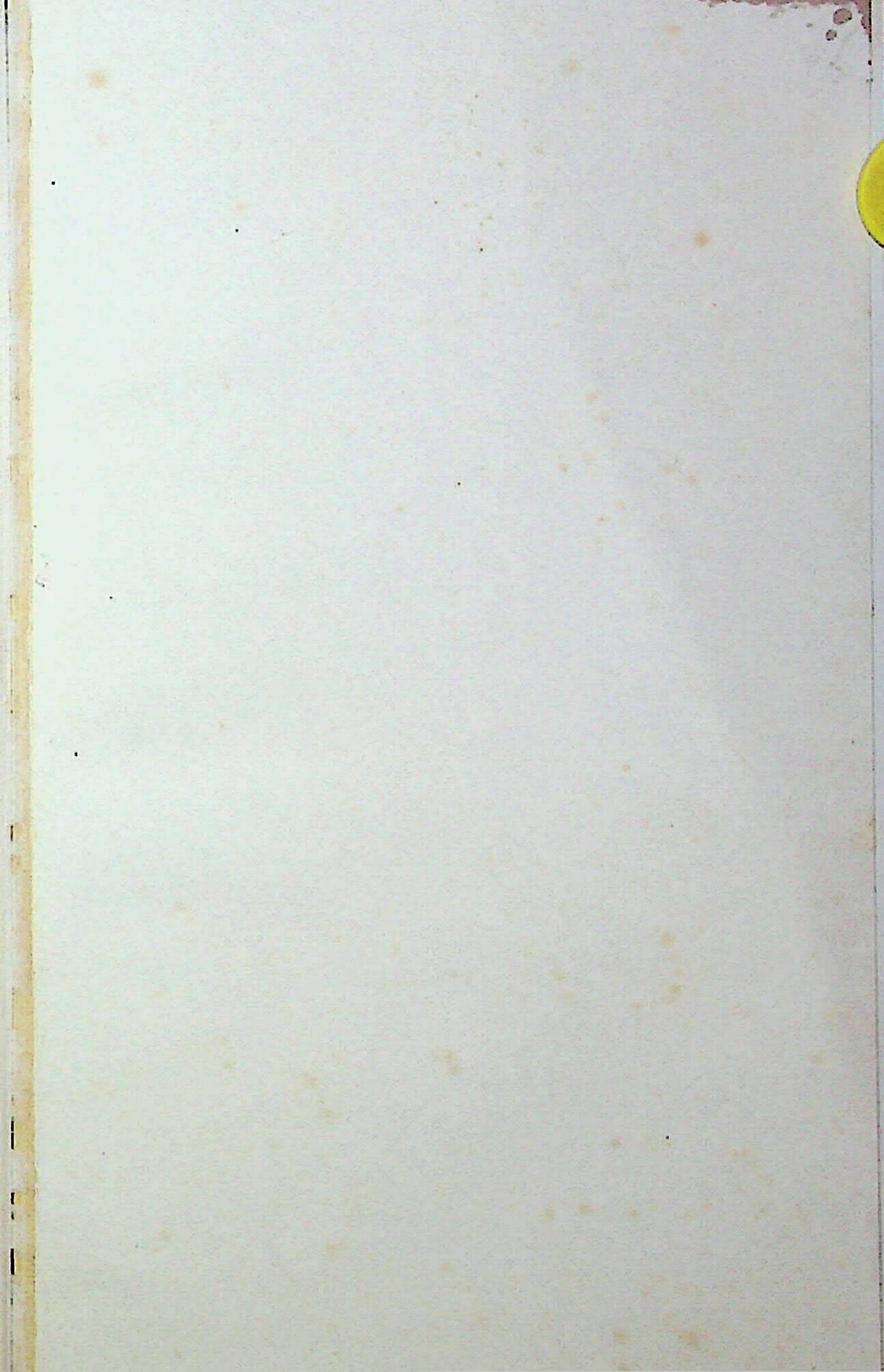
।। इति रुद्रजाप्यं सम्पूर्णम् ।।

(ग्रन्थपुष्पिका)

संवत् १७६५ वर्षे मार्गशीर्ष वदि ८ भौमे अहमदाबादवास्तव्य नागर सागेदराज्ञातीय त्रिभाणजी सुतमिकी का लिखितमिदं।। नागरसागेदराज्ञातीय मेहेता-शामजीसुत-मेहेता-कमलजी पठनार्थम्।।

॥ शुभमस्तु ॥

॥ श्रीः ॥



ॐ कद्रुद्राय॒ प्रचे॑तसे मी॒ढुष्

हृदे॥१॥ यथा॑ नो॒ अदि॑ति॒ः क॒

तो॒काय॑ रु॒द्रिय॑॥२॥ यथा॑

रु॒द्रश्चिके॑तति। यथा॒ विश्वे॑ स॒

रु॒द्रं जला॑षभेषजं। तच्छं॒योः

सूर्यो॒ हिर॑ण्यमिव॒ रोच॑ते। श्रे

करत्यवं॑ते सु॒गं मे॒षाय॑ मे॒ष्ये॑।

सोम॒ श्रि॒यमधि॒ नि धे

श्रवं॑स्तुविनृ॒म्णं॥७॥ मा नं॑ः स

आ नं॑ इन्दो॒ वाजे॑ भज॥८॥

धाम॑न्नृतस्य॑। मूर्धा नाभा॑ सोम

शाङ्खायन शाखा के इस दुर्लभ रुद्राध्याय के संपादक एवं अनुवादक प्रो॰ प्रकाश पाण्डेय वेद, तन्त्र, शैवागम, साहित्य, दर्शन एवं प्राचीन लिपि-शास्त्र के प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। आपके संस्कृत एवं हिन्दी भाषाओं में अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रो॰ पाण्डेय के द्वारा सम्पादित प्रमुख ग्रन्थ हैं — कालीपूजापद्धति, मुद्राविमर्श, वृद्धस्वच्छन्दसंग्रहतन्त्रम् तथा संकेतकौमुदी। इसके अतिरिक्त प्रो॰ पाण्डेय मेरुतन्त्र, काव्यप्रकाश की शितिकण्ठविबोधनटीका एवं अद्भुतसागर के सम्पादन के साथ-साथ शारदा लिपि में लिखित ज्योतिषशास्त्र के अप्रतिम ग्रन्थ "बोधाटवी" का सम्पादन एवं अनुवाद कार्य भी पूर्ण कर रहे हैं। प्रो॰ पाण्डेय की अन्त:शास्त्रीय अनुसन्धान शैली उन्हें पारम्परिक एवं आधुनिक विधा में निष्णात विद्वान् के रूप में उपस्थापित करती है।

वर्तमान में आप राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय) के गरली परिसर (हिमाचल प्रदेश) में प्राचार्य पद पर कार्यरत हैं।

2009, x, 102 p.; 23 cm.

Hardbound
ISBN13: 978-81-85503-15-8
ISBN10: 81-85503-15-X

Rs. 320
US $ 16.00





Indira Gandhi National Centre for the Arts
New Delhi